# श्वेताश्वतर उपनिषद्

॥ ओ३म् ॥

## भूमिका

**ईश्वर की सत्ता सर्वोच्च है।**

इस मूल सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए यह उपनिषद् कहता है कि—

**न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके**
**न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।**
**स कारणं करणाधिपाधिपो**
**न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥**

उस परमपिता परमात्मा का कोई स्वामी नहीं है। उस पर कोई शासन करने वाला नहीं है। उसका कोई लिंग नहीं है। क्योंकि वह स्वयं सृष्टि का निर्माता है। इस सृष्टि के साधनों का भी स्वामी है।

मूल आध्यात्मिक सिद्धान्तों को हमारे उपनिषद् अत्यन्त सरल रूप में प्रस्तुत करने की कला में सर्वोत्तम ग्रन्थ हैं। आध्यात्मिक विकास के लिए वेदों और उपनिपदों का गहरा स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है।

आशा है वैदिक मान्यताओं के प्रचार प्रसार में श्वेताश्वतरोपनिषद् का यह संस्करण अवश्य ही लाभकारी होगा।

# श्वेताश्वतरोपनिषद्

## प्रथमोऽध्याय:

ओ३म्-ब्रह्मवादिनो बदन्ति। किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता, जीवाम केन, क्व च सम्प्रतिष्ठा।
अधिष्ठिताः केन, सुखेतरेषु वर्त्तामहे, ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥ १ ॥

**शब्दार्थ**—ब्रह्मवादी [ब्रह्मज्ञान के विद्यार्थी] ब्रह्म के विषय पर परस्पर वार्तालाप करते हैं और कहते हैं कि (कारणम्) जगत् का कारण [किम्] क्या कोई (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] है [अथवा ब्रह्म क्या है] (कुतः) कहाँ से [किससे] (जाता: स्म) हम उत्पन्न हुए हैं। (केन) किस से [किसके द्वारा] (जीवाम) हम जीते हैं (च) और (क्व) किसके (सम्प्रतिष्ठाः) हम आश्रित हैं। (ब्रह्मविदः) हम ब्रह्म के जानने वाले (केन) किससे (अधिष्ठिताः) अधिष्ठित किसकी अध्यक्षता में (सुखेतरेषु—सुख + इतरेषु) सुख वा दुःख में (व्यवस्थाम्) नियम में (वर्त्तामहे) वर्तते हैं [अर्थात् किसकी व्यवस्था से हम सुख-दुःख भोग रहे हैं]।

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥

**शब्दार्थ**—(इति) यह (चिन्त्यम्) विचारणीय है (कि क्या) (कालः) काल [वक्त] (स्वभाव) [पदार्थों का] स्वभाव [कुदरत] (नियतिः) प्रारब्ध [भाग्य], (यदृच्छा) अकस्मात् [इत्तफाक से] (भूतानि) [पञ्च] भूत [पृथिवी, जल, तेज, वायु वा आकाश], (योनिः) योनि अर्थात् माता-पिता अथवा (पुरुषः) जीवात्मा [सृष्टि का कारण है अथवा] (एषाम्) इन [उपरोक्त प्रथम पद] का (संयोगः) संयोग [अर्थात् पृथक्-पृथक्, नहीं तो क्या मिलकर] [सृष्टि का कारण है]। [उत्तर देते हैं कि] (न तु) नहीं, (आत्मा भावात्) आत्मभाव न होने के

कारण [और] (आत्मा) जीवात्मा (अपि) भी (अनीश:) अनीश अर्थात् अल्प शक्ति (सामर्थ्य) वा अल्प ज्ञान वाला होने [और] (सुख दु:ख हेतो:) सुख-दु:ख भोगने में परतन्त्र होने के कारण [सृष्टि का कारण नहीं हो सकता]।। २ ।।

**ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।**
**यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ ३ ॥**

**शब्दार्थ**–[तब] (ते) वे [ब्रह्मवादी ऋषि] (ध्यानयोगानुगता:) ध्यानयोग में अनुगत [लीन] होकर (स्वगुणै:) [उसके] अपने गुणों से (निगूढाम्) गूढ़ [छिपी हुई, अव्यक्त] (देवात्मशक्तिम्) परमात्मा की दिव्य शक्ति को (अपश्यन्) देखते हुए [यह विचारने लगे कि] (य:) जो [महान् देव] (एक:) अकेला ही (तानि) उन पूर्वोक्त (कालात्मयुक्तानि) काल से लेकर आत्मा तक [आठों] (निखिलानि) समस्त (कारणानि) कारणों का (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है [वह निस्सहाय अकेला ही जगत् का कारण है]।। ३ ।।

**तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्द्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।**
**अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥ ४ ॥**

**शब्दार्थ**–[उन ब्रह्मवादी ऋषियों ने समाधि अवस्था में] (तम्) उस [संसार रूपी ब्रह्मचक्र] को [देखा जैसा कि निम्न वर्णित है अर्थात्] (एकनेमिं) एक [प्रकृति रूप] नेमि [परिधि-घेरा] वाला, (त्रिवृतम्) तीन [सत्त्व, रज वा तम रूप] लपेटों वाला, (षोडशान्तम्) १६ [प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम कलारूप] अन्त [जुड़े टुकड़े अर्थात् अवयव] वाला, (शतार्धारम्–शत + अर्ध + अरम्) ५० अरे अर्थात् [अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश पाँच क्लेश तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन और इन्हीं की ११ अशक्तियों वा ६ तुष्टि अर्थात् एक की प्रकृति के ज्ञान मात्र में, दूसरे की संन्यासचिह्नों के धारण अर्थात् वैराग्य में, तीसरे की यह समझने में कि काल ही सब कुछ करता है, चौथे की भाग्य के भरोसे में, पाँचवें की अहिंसा व्रत में, छठे की सत्यव्रत

में, सातवें की अस्तेय व्रत में, आठवें की ब्रह्मचर्य व्रत में और नवम की अपरिग्रह अर्थात् विषयभोग में दोष देखकर अस्वीकार करने में तुष्टि हो जाती है और इन ९ तुष्टियों की ९ ही अशक्तियाँ अर्थात् अभाव वा ८ सिद्धियाँ [ऐश्वर्य] अर्थात् एक अणिमा, दूसरी महिमा, तीसरी गरिमा, चौथी लघिमा, पाँचवीं प्राप्ति, छठी पराक्राम्य, सातवीं ईशित्व और आठवीं वशित्व और इन आठ की फिर ८ अशक्तियाँ, इस प्रकार ५ क्लेश, २८ अशक्ति, ९ तुष्टि और ९ सिद्धि मिलकर कुल ५० अरों वाला ब्रह्मचक्र बनता है। तथा (षड्भिः) छ (अष्टकैः) अष्टकों वाला [अर्थात् १ प्रकृत्यष्टक-पाँच स्थूलभूत, मन, बुद्धि और अहंकार, २. धात्वष्ट, त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, अस्थि, मज्जा वा वीर्य ३. सिद्धि-अष्टक-परकाय प्रवेश, जलादि में असंग, उत्क्रान्ति, ज्वलन्त, दिव्यश्राप, आकाशगमन, प्रकाशावरणक्षय और भूतजय, ४. मद-अष्टक-तनमद, धनमद, जनमद, बलमद, ज्ञानमद, बुद्धिमद, कुलमद, वा जातिमद, ५. अशुभ-अष्टक-अशुभ सोचना, सुनना, देखना, बोलना, स्पर्श करना, कर्म करना, कराना, होने देना, ६. धर्म अष्टक-नित्यधर्म, निमित्त धर्म, देशधर्म, कालधर्म, कुलधर्म, जातीय धर्म, आपद्-धर्म और अपवाद धर्म, (विश्वरूपैकपाशम्) विश्वरूपी एक ही पाश [बन्धन] वाला, (त्रिमार्गभेदम्) [उत्पत्ति, स्थिति वा प्रलय रूप] तीन मार्गों के भेदन करने वाला, (द्विनिमित्तैकमोहम्-द्विनिमित्त + एकमोहम्) दो [शुभ और अशुभ ब्रह्मचक्र के चलने के] निमित्त वाला वस्तुतः मोहरूपी एक ही निमित्त वाला (ब्रह्मचक्र) जो है उसको समाधि में देखा अर्थात् इस अद्वैत जगत् रचना को देखकर ब्रह्म में लीन हो गये]॥४॥

पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।
पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥५॥

**शब्दार्थ**-[संसार रूपी अथवा पिण्डरूपी नदी] (पंचस्रोतः) पांच ज्ञानेन्द्रियरूप स्रोतों में बहने वाला (अम्बुम्) जलवाली, (पञ्चयोन्युग्रवक्राम्) पञ्च स्रोतों के कारण उग्र [भीषण]

और वक्र [टेढ़ी, मेढ़ी] (पंचप्राणोर्मिम्—पञ्चप्राण + ऊर्मिम्) पञ्च प्राणरूपी लहरों वाली, (पञ्चबुद्धयादिमूलाम्)—[पञ्चबुद्धि + आदि-मूलाम्] पाँच बुद्धि रूपी [शब्द, स्पर्श, रूप, रस वा गन्ध-रूप] पाँच आवर्त अर्थात् भंवर वाली, (पञ्चदुःखौधवेगाम्—पंचदुःख + ओधवेगाम्) [जन्म दुःख, मृत्यु दुःख, जरा दुःख, रोग दुःख और गर्भ दुःख] पाँच प्रकार के दुःखों के प्रवाह से वेगवाली, (पञ्चाशद्भेदाम्) पचास [कई एक] भेद [तारने के तरीकों] वाली, (पञ्चपर्वाम्) [अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप] पाँच पर्व [जोड़] वाली [नदी को] (अधीमः) हम जानते हैं ॥ ५ ॥

**सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।**
**पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥ ६ ॥**

शब्दार्थ—(अस्मिन्) इस (सर्वाजीवे—सर्व + आजीवे) सब जीवों के जीवनाधार, (सर्वसंस्थे) सबके आश्रयभूत, (बृहन्ते) बड़े (ब्रह्मचक्रे) ब्रह्मचक्र में (हंसः) जीवात्मा (भ्राम्यते) [सुख-दुःख का फल भोगने रूप] घुमाया जाता है। [जीव जब] (आत्मानम्) अपने आत्मा (च) और (प्रेरितारम्) [इस चक्र के] प्रेरक [परमात्मा] को (पृथक्) भिन्न (मत्वा) जानकर (तेन) उस [परमात्मा] से (जुष्टः) प्रेम किया हुआ [अर्थात् उसका प्रेमपात्र जब हो जाता है] (ततः) तब (अमृतत्वम्) मोक्ष को (एति) प्राप्त कर लेता है ॥ ६ ॥

**उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च।**
**अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥ ७ ॥**

शब्दार्थ—(एतत्) यह (परमम्) [सर्वोत्कृष्ट] (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] (तु) तो (उद्गीतम्) ऊँचा स्तुति मान करने योग्य है। (तस्मिन्) उसे [उपरोक्त ब्रह्मचक्र] में (त्रयम्) तीन (अक्षरम्) अविनाशी [ब्रह्म, जीव वा प्रकृति] (सुप्रतिष्ठा) अच्छी प्रकार स्थित हैं। (अत्र) इन [ब्रह्म, जीव वा प्रकृति में] (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता (अन्तरम्) अन्तर [भेद] (विदित्वा) जानकर (ब्रह्मणि) ब्रह्म में (लीनाः) लीन हुए (तत्पराः)

उसमें रमकर (योनिमुक्ताः) योनि अर्थात् जन्म-मरण के बन्धम से मुक्त हो जाते हैं ॥ ७ ॥

**संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।**
**अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ८ ॥**

**शब्दार्थ**-(एतत्) इस [प्रकृति] (क्षरम्) कार्यरूप [पृथिव्यादि कार्यरूप में] नाशवान् [और] (अक्षरम्) [कारण रूप में] अविनाशी (च) और (व्यक्तम्) [कार्यरूप में] दृश्य [प्रकट] [वा] (अव्यक्तम्) [कारण रूप में] अदृश्य [अप्रकट] [दोनों रूपों में] [संयुक्तम्] मिली हुई को अर्थात् (विश्वम्) सब जगत् को (ईशः) सबका स्वामी [ईश्वर] (भरते) धारण वा पालन करता है (च) और (अनीशः) असमर्थ, परतन्त्र [फल भोगने में] (आत्मा) जीवात्मा (भोक्तृभावात्) सुख-दुःख [कर्मफल] भोगने के कारण (बध्यते) [जन्म मरण के] बन्धन में बन्ध जाता है [किन्तु वह] (देवम्) परमदेव परमात्मा को (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशैः) सब बन्धनों से (मुच्यते) छूट जाता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ८ ॥

**ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।**
**अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ ९ ॥**

**शब्दार्थ**-(द्वौ) दो (ज्ञाज्ञौ-ज्ञ + अज्ञौ) ज्ञानी [ब्रह्म] वा अज्ञानी [जीव], (अजौ) दोनों ही अजन्मा (ईशानीशौ = ईश + अनीशौ) समर्थ-स्वामी [ब्रह्म] व असमर्थ [अल्प शक्ति वाला जीव] [व] [तीसरा] (हि) निश्चय से (एकः) एक (अजा) अजा, [अजन्मा, अनादि] और है [प्रकृति] [जो, कि] (भोक्तृ + भोग्यार्थ युक्ता) भोगने वाले [जीव] के भोगों के अर्थों से युक्त [अर्थात् भोग के लिए] है (च) और (आत्मा) परमात्मा (अनन्तः) अनन्त, (विश्वरूपः) विश्वरूप [सारा विश्व उस सर्वव्यापक का अवयवरूप है] [और] (हि) निश्चय से (अकर्त्ता) [वह] कर्म व उसके फल-बन्धन में नहीं फंसता। (यदा) जब [जीव] (त्रयम्) उक्त तीनों [ब्रह्म, जीव वा प्रकृति] को (विन्दते) पा लेता [जान लेता]

है तो कहता है कि (एतत्) यह [सर्वव्यापक अन्तर्यामी] (ब्रह्म) ब्रह्म है ॥ ९ ॥

**क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः।**
**तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्व-भावात् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥ १० ॥**

**शब्दार्थ**–(प्रधानम्) प्रकृति [कार्यरूप] (क्षरः) नाशवान् है, (हरः) संहर्ता [ब्रह्म] (अमृताक्षरम्) अविनाशी है। (क्षरात्मानौ) नाशवान् [कार्यरूप] प्रकृति वा अविनाशी जीव आत्मा इन दोनों पर (एकः) एक (देवः) परमदेव परमात्मा (ईशते) स्वामित्व करता है। (तस्य) उस [ब्रह्म] के (अभिध्यानात्) पूरे तौर पर ध्यान करने से, (योजनात्) अपने आत्मा को उसमें युक्त करने अर्थात् योग-समाधि से (च) और (तत्त्वभावात्) उसमें तन्मय (लीन) होने से (भूयः) फिर (अन्ते) अन्त में (विश्वमायानिवृत्तिः) संसार की माया [बन्धनों] से निवृत्ति हो जाती है अर्थात् वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥

**ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।**
**तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥ ११ ॥**

**शब्दार्थ**–[मनुष्य] (देवम्) परमदेव [ब्रह्म] को (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशापहानि–सर्वपाश + अपहानि) [उसके] सब बन्धनों का नाश हो जाता है [और] (क्लेशैः) [सब] क्लेशों के (क्षीणैः) क्षीण [नष्ट] होने पर (जन्म-मृत्युप्रहाणि) जन्म-मृत्यु के दुःख [आवागमन] से छूट जाता है, (तस्य) उसे [ब्रह्म] के (अभिध्यानात्) अच्छी प्रकार ध्यान करने से (देहभेदे) देह छूटने [मृत्यु] पर (तृतीयम्) तीसरे (विश्वैश्वर्यम्) विश्व के ऐश्वर्य को प्राप्त कर (केवलः) प्रकृति के सांसारिक सुखों से विरक्त [जीवात्मा] (आप्तकामः) सर्वकामनापूर्ण [सफल मनोरथ] हो जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

**एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।**
**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ १२ ॥**

शब्दार्थ–(एतत्) इस (नित्यम्) नित्य (एव) ही (आत्मसंस्थम्) आत्मा में स्थित [ब्रह्म] को (ज्ञेयम्) जानना चाहिए। (अतः) इससे (परम्) श्रेष्ठ [बड़ा] (किञ्चित्) कुछ [कोई] (हि) भी (न वेदितव्यम्) नहीं जानना चाहिये। (भोक्ता) [सुख-दुःख] भोगने वाला [जीवात्मा] (भोग्यम्) भोगने योग्य [प्रकृति] को (प्रेरितारम्) प्रेरणा देने वाले [ब्रह्म] को (मत्वा) जानकर (सर्वम्) सब (त्रिविधम्) तीन प्रकार के जगत् कारण [ब्रह्म, प्रकृति वा जीव] (प्रोक्तम्) जो ऊपर कहे गये हैं उनको [पृथक्-पृथक् जानकर] ब्रह्मज्ञानी कहता है [कि] (मे) मेरा (तत्) वह [ब्रह्म] है अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥ १२ ॥

**वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न, दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः।**
**स भूयं एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥ १३ ॥**

शब्दार्थ–(यथा) जैसे (वह्नेः) अग्नि के (योनिगतस्य) अपने योनि [कारण-स्थानकाष्ठ] में रहते हुए (तस्य) उस की (मूर्तिः) आकृति [चमकीला स्वरूप] (न दृश्यते) दिखाई नहीं देती (च) और (न) न (एव) ही [उसका] (लिङ्गनाशः) उपस्थिति के चिह्न का नाश [होता है] (सः) वह [अग्नि] (भूयः एव) फिर भी (इन्धनयोनिगृह्यः) ईन्धनरूपी योनि [उत्पत्ति स्थान] में ग्रहण की जा सकती है (तद् वा) तो वैसे ही (उभयम्) दोनों [ब्रह्म व जीव] (व) निश्चय से (देहे) देह में [हृदयाकाश में स्थित] (प्रणवेन) प्रणव [ओ३म्] के जप से [जाने जा सकते हैं] ॥ १३ ॥

**स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।**
**ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत् ॥ १४ ॥**

शब्दार्थ–(स्वदेहम्) अपने शरीर को (अरणिम्) [नीचे की] अरणि [विशेष ईन्धन] (कृत्वा) के समान करके (च) और (प्रणवम्) ओ३म् [परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट नाम] को (उत्तरारणिम्) ऊपर की अरणि [के समान करके] (ध्याननिर्मथनाभ्यासात्) ध्यानरूपी रगड़ के निरन्तर अभ्यास

से (निगूढवत्) आत्मा के भीतर में स्थित (देवम्) परमात्मदेव को (पश्येत्) [ध्यान दृष्टि से] देखे ॥ १४ ॥

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्माऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ–[जैसे] (तिलेषु) तिलों में (तैलम्) तेल, (इव) जैसे (दधिनि) दही में (सर्पिः) घी, (स्रोतःसु) [भूमिगत] स्रोतों [झरनों] में (आपः) जल (च) और (अरणीषु) अरणियों [विशेष काष्ठों] में (अग्निः) अग्नि [छिपी होती है] (एवम्) ऐसे ही (आत्मनि) हृदयाकाश के भीतर आत्मा में (असौ) यह (आत्मा) परमात्मा (गृह्यते) ग्रहण किया जा सकता है [परन्तु] (यः) [उससे] जो (एनम्) इस [ब्रह्म] को (सत्येन) सत्याचरण [व] (तपसा) तप [धर्मानुष्ठान] के द्वारा (अनुपश्यति) देख [जान] लेता है ॥ १५ ॥

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।
आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत् परम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ–(क्षीरे) दूध में (सर्पिः) घी (इव) की तरह (सर्वव्यापिनम्) सर्वव्यापक (आत्मानम्) परमात्मा को (अर्पितम्) [अपने आत्मा में] उपस्थित [जाने]। (आत्मविद्यातपोमूलम्) आत्मज्ञान वा तप [धर्मानुष्ठान] ही जिसका मूल [अर्थात् जानने का साधन है] (तत्) उस (ब्रह्म) की (उपनिषत्परम्) [ध्यान योग द्वारा] उपासना ही परम [श्रेष्ठ] है ॥ १६ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः

**युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।**
**अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥ १ ॥**

यजु० ११/१

**शब्दार्थ**–[जो] (युञ्जानः) योग के करने वाले मनुष्य [जब] (तत्त्वाय) ब्रह्म ज्ञान के लिए (प्रथमम्) पहले (मनः) अपने मन को [परमेश्वर में युक्त करते हैं तब] (सविता) सर्वजगदुत्पादक परमेश्वर (धियम्) [उनकी] बुद्धि को [अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है] [फिर वे योगी] (अग्नेः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप को (निचाय्य) यथावत् निश्चय करके (अध्याभरत्) अपने आत्मा में परमेश्वर को धारण करते हैं। (पृथिव्याः) पृथ्वी के बीच में [योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है ऐसा जानना चाहिये] ॥ १ ॥

**युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।**
**स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥** यजु० ११/२

**शब्दार्थ**–[हे योग और ब्रह्मविद्या जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यो !] जैसे (वयम्) हमने [योगियों ने] (युक्तेन) योगयुक्त [योगाभ्यास किया] (मनसा) मन [विज्ञान] से और (शक्त्या) सामर्थ्य योगबल से (देवस्य) सर्वद्योतक, स्वप्रकाश व आनन्द- स्वरूप (सवितुः) सकल जगदुत्पादक जगदीश्वर के (सवै) जगत्रूप इस ऐश्वर्य में (स्वर्ग्याय) मोक्षसुख की प्राप्ति के लिए [ज्ञानरूप प्रकाश को धारण करें वैसे तुम भी करो] ॥ २ ॥

**युक्त्वाय सविता देवान् स्वर्यतो धिया दिवम्।**
**बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥ ३ ॥**

यजु० ११/३

**शब्दार्थ**–[उपरोक्त प्रकार से योगाभ्यास किये जाने से] (देवान्) देवों [अपने उपासकों योगियों को] (सविता) सर्वजगदुत्पादक अन्तर्यामी ईश्वर अपनी कृपा से (स्वर्यतः) अत्यन्त सुख दे के (धिया) [उनकी] बुद्धि के साथ [अपने

आनन्दस्वरूप प्रकाश को युक्त करता है] [तथा] (युक्त्वाय) [उनकी आत्माओं को अपने में] सम्यक् युक्त करके (बृहज्ज्योतिः) अनन्त प्रकाश वा (दिवम्) दिव्य-स्वरूप को (प्रसुवाति) प्रकाशित करता है [और] (तान्) उन (करिष्यतः) सत्य, प्रेम, भक्ति से [उस परमेश्वर की] उपासना करने वालों (योगियों) को [सदा आनन्द में रखता है] ॥ ३ ॥

**युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।**

**वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥**

यजु० ११/४, ऋ० ५/८/१/१

**शब्दार्थ**–[जो] (होत्राः) होता [योगी मनुष्य], (विप्रा) ईश्वरोपासक मेधावी [बुद्धिमान्] (विप्रस्य) सर्वज्ञ [परमेश्वर], (बृहतः) महान्, (विपश्चितः) अनन्त विद्यावान्, (सवितुः) सर्वजगदुत्पादक, (देवस्य) सर्वजगत्प्रकाशक [परमात्मा] के [मध्य] (मनः) मन को (युञ्जते) युक्त करते [और] (धियः) बुद्धि को (उत) भी (युञ्जते) युक्त करते हैं [जो परमात्मा] (वयुनावित्) सब प्रज्ञानों व प्रजा को जानने वाला [साक्षी] है [और] (एकः) एक [असहाय] (इत्) ही (विदधे) सब जगत् को रचता व धारण करता है [उसकी] (मही) महती बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार से स्तुति [करनी चाहिए] [ऐसा करने से मनुष्य परमेश्वर के पास पहुंच जाता है अर्थात् उसको प्राप्त कर लेता है] ॥ ४ ॥

**युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकः एतु पथ्येव सूरेः।**

**शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥**

यजु० ११/५

**शब्दार्थ**–[ईश्वर योग का उपदेश देने वालों वा योग जिज्ञासुओं को उपदेश करता है कि जब तुम] (पूर्व्यम्) सनातन (ब्रह्म) ब्रह्म [मुझ परमेश्वर] की (नमोभिः) सत्यभाव से नमस्कारादि रीति द्वारा [उपासना करोगे तब मैं तुम दोनों को आशीर्वाद दूंगा कि] (श्लोकः) सत्यवाणी वा सत्यकीर्ति

(वाम्) तुम दोनों को (विएतु) विशेषतया विविध प्रकार से प्राप्त हों। (सूरेः) परम विद्वान् को (इव) जैसे (पथ्या) धर्ममार्ग [यथावत् प्राप्त होता है इसी प्रकार तुमको सत्य सेवा से सत्यकीर्ति प्राप्त हो]। (शृण्वन्तु) तुम लोग सुनो कि (ये) जो (अमृतस्य) मोक्ष मार्ग के (पुत्रा) पालन करने वाले (विश्वे) सब [मुक्त] जीव अविनाशी ईश्वर के योग से (दिव्यानि धामानि) दिव्य लोकों अर्थात् सुखरूप जन्मों वा स्थानों को [आतस्थुः] अच्छी प्रकार स्थिर प्राप्त हो चुके हैं। उसी उपासना योग से (युजे) तुम्हें युक्त करता हूं।

**भावार्थ**–योग के जिज्ञासुओं को चाहिए कि योगारूढ़ विद्वानों का संग करके उनसे योगविधि सीखकर स्वयं योगाभ्यास करें अर्थात् ब्रह्म की उपासना करें ॥ ५ ॥

**अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते।**
**सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र सञ्जायते मनः ॥ ६ ॥**

**शब्दार्थ**–(यत्र) जहाँ [शरीर के जिस स्थान में] (अग्निः) अग्नि (अभिमथ्यते) मथा [सुलगाया] जाता है, [अर्थात् मूलाधार में] (वायुः) प्राण (अधिरुध्यते) रोका जाता है [और] (यत्र) जहाँ (सोमः) अमृत रस (अतिरिच्यते) अतिशय से [बहुत] होता है [टपकता है], (तत्र) वहाँ (मनः) मन (संजायते) युक्त होता [स्थिरता का लाभ करता] है। [देह में मूलाधार एक स्थान है जहाँ प्राण रोका जाता है, मानस अग्नि को सुलगाया जाता है और वहाँ से सुषुम्णा नाड़ी तक अमृत टपकता है और आनन्द प्रतीत होता है वहाँ मन ठहर जाता है।] ॥ ६ ॥

**सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्।**
**तत्र योनिं कृण्वसे न हि ते पूर्वमक्षिपत् ॥ ७ ॥**

**शब्दार्थ**–(सवित्रा) सर्वजगदुत्पादक से (प्रसवेन) जो [महान् अद्भुत रचना वाली] सृष्टि प्रसव [उत्पन्न] हुई है [उसे देखकर] (पूर्व्यम्) सृष्टि के पूर्व वर्त्तमान सनातन अनादि (ब्रह्म) ब्रह्म को (जुषेत) [उसके आनन्द स्वरूप में मग्न होकर उसको] सेवन करें (तत्र) उसी ब्रह्म (योनिम्)

उत्पत्ति स्थान को (कृण्वसे) तू कर [अर्थात् उस अनन्त ब्रह्मरूप योनि में स्थित उसी को ही अपना गुरु, माता, पिता मान]। [इससे] (ते) तू (पूर्वम्) [समय से] पूर्व (न हि) नहीं (अक्षिपत्) गिरेगा अर्थात् बिना पूरे नियत काल [एक ब्रह्म वर्ष] मोक्ष का सुख भोगेगा और जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आयेगा ॥ ७ ॥

**त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य।**

**ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्त्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ ८ ॥**

**शब्दार्थ**–(विद्वान्) विद्वान् व्यक्ति (शरीरम्) शरीर के (त्रिः) तीनों भाग [शिर, गर्दन वा छाती] (समम्) सीधा (उन्नत) उन्नत [ऊंचा] (स्थाप्य) रखकर (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों को (मनसा) मन के साथ (हृदि) हृदय में (संनिवेश्य) संनिविष्ट [स्थित] करके [अर्थात् योग द्वारा] (ब्रह्मोडुपेन = ब्रह्म + उडुपेन) ब्रह्मरूपी [ओंकार रूपी] नौका से (सर्वाणि) सब (भयावहानि) भयानक (स्त्रोतांसि) जल प्रवाहों [संसार रूपी नदी के स्त्रोतों] को (प्रतरेत) पार कर जावे ॥ ८ ॥

**प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।**

**दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥**

**शब्दार्थ**–(इह) इस योगाभ्यास में (संयुक्तचेष्टः) चेष्टाओं को वश में करके [रोककर] [और] (प्राणान्) प्राणों श्वासों को (प्रपीड्य) खीचें और रोककर (प्राणे) प्राण के (क्षीणे) क्षीण होने पर [जब भीतर न रुक सके] (नासिकया) [उसे] नासिका से [उच्छ्वसीत] शनैः शनैः बाहर निकाल देवे। [दुष्टाश्वयुक्तम् = दुष्ट + अश्व + युक्तम्] दुष्ट घोड़ों से युक्त (वाहन) रथ में (इव) जैसे [घोड़ों को वश में किया जाता है वैसे] (अप्रमत्तः) प्रमाद रहित (विद्वान्) विद्वान् मनुष्य [प्राणायाम द्वारा] (मनः) मन को (धारयेत) धारण करे [अर्थात् वश में करे] ॥ ९ ॥

(प्राणायाम करने से मन व इन्द्रियाँ वश में आ जाती हैं अतएव योगी के लिए प्राणायाम अत्यावश्यक है)।

समे शुचौ शर्करावह्निबालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

**शब्दार्थ**–(सम) सम [पदरे-हमवार] (शुचौ) स्वच्छ [पवित्र] (शर्करावह्निबालुकाविवर्जते = शर्करा + वह्नि + बालुका + विवर्जिते) बजरी [धूल], आग वा रेत से रहित (शब्दजलाश्रयादिभिः) [तथा] [मधुर] शब्द [वा] [नदी सरोवर आदि] के आश्रय से युक्त [होने के कारण] (मनः) मन के (अनुकूले) अनुकूल [गुहानिवाताश्रयणे] गुफा वाले [एकान्त] निवास [वायु के वेग से रहित] स्थान में योगाभ्यास करें परन्तु (चक्षुपीडने) आँखों की [धूपादि से] पीड़ा [दुःख] देने वाले स्थान में (न तु) नहीं (प्रयोजयेत्) योगाभ्यास करें ॥ १० ॥

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११ ॥

**शब्दार्थ**–(योगे) योग [ब्रह्म का ध्यान] करते समय [योगी को] (एतानि) ये (रूपाणि) भिन्न-भिन्न रूप (पुरः-सराणि) आरम्भ में [पहले ही] दिखलाई देते हैं [अर्थात्] (नीहारधूमार्कानिलानलानाम् = नीहार + धूम + अर्क + अनिल + अनलानाम्) कुहरा सा, धुआं सा, सूर्य, वायु और अग्नि [तथा] (खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्–खद्योत + विद्युत् + स्फटिक + शशीनाम्) जुगनू, बिजली, स्फटिक [बिलौरी पत्थर] और चन्द्र–[इनकी ज्योतियाँ दिखाई देती हैं]। [योग में ब्रह्मदर्शन से पहले ये रूप] (ब्रह्मणि) ब्रह्म में (अभिव्यक्तिकराणि) प्रकटता [ब्रह्म का साक्षात्कार] कराने वाले होते हैं ॥ १० ॥

पृथ्व्याप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणेप्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥ १२ ॥

**शब्दार्थ**–(पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे = पृथिवी + अप् + तेजः + अनिल + ख) पृथिवी, जल, तेज, वायु वा आकाश (पञ्चात्मके) [देह के इन] पाँच भूतों के (समुत्थिते) भली प्रकार वश में हो जाने [तथा] (योगगुणे) योग [चित्तवृत्तिनिरोध] के गुण [तेजरूपफललाभ] के (प्रवृत्ते) प्रवृत्त होने पर [योगाग्निमयम् = योग + अग्निमयम्] योग द्वारा तेजोमय [देदीप्यमान] (शरीरम्) शरीर (प्राप्तस्य) प्राप्त हुए (तस्य)

उस योगी को [न रोग], (न जरा) न जरा [बुढ़ापा] [और] (न मृत्युः) न ही मृत्यु दुःख होता [सताता] है ॥ १२ ॥

**लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।**
**गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥ १३ ॥**

**शब्दार्थ**—(योगप्रवृत्तिम्) योग में प्रवृत्त हुए [योगी का] (प्रथमाम्) पहला [फल] (वदन्ति) कहते हैं [कि उसके शरीर में] [हलकापन], (आरोग्यम्) नीरोगता, (अलोलुपत्वम्) अलोलुपता [विषयों की लालसा अथवा किसी पदार्थ का लालच न होना], (वर्णप्रसादम्) [शरीर के] वर्ण [रंग] का निखरना (च) और (स्वरसौष्ठवम्) स्वर में माधुर्य, [शरीर से] (शुभः) अच्छी (गन्धः) [अर्थात् सुगन्ध] निकलना, (मूत्रपुरीषमल्पम्) मूत्र वा पुरीष का अल्प मात्रा [थोड़ा होना] [हो जाते हैं] ॥ १३ ॥

**यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम्।**
**तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥ १४ ॥**

**शब्दार्थ**—(यथा) जैसे (एव) ही (बिम्बम्) स्वर्ण पिण्ड (मृदया) मट्टी से (उपलिप्तम्) लिप्त [सना] हुआ (तत्) वह (सुधान्तम्) स्वच्छ किया [धोया] हुआ (तेजोमयम्) तेजोमय (कान्तियुक्त) (भ्राजते) चमकने लग पड़ता है (तत् उ) वैसे ही (देही) देहधारी [जीवात्मा] अपने आत्मा के (आत्मतत्त्वम्) आत्मतत्त्व [परमात्मा] को (प्रसमीक्ष्य) [अपने भीतर] भली प्रकार देख [जान] कर (एकः) एक [अकेला] (वीतशोकः) शोक रहित हुआ (कृतार्थः) कृतार्थ [सफल मनोरथ] (भवते) हो जाता है ॥ १४ ॥

**यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।**
**अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १५ ॥**

**शब्दार्थ**—(युक्तः) योगी (यदा तु) जब (दीपोपमेन) दीपक के समान [ब्रह्मतत्त्वम्) ब्रह्म के स्वरूप को (इह) यहाँ [इस जीवन में] (प्रपश्येत्) साक्षात् कर लेता है [तब]

(अजम्) अजन्मा, (ध्रुवम्) [सर्वव्यापक होने से] कम्पन से रहित (सर्वतत्त्वैर्विशुद्धम्) सब तत्त्वों से अधिक शुद्ध (देवम्) परमात्मदेव को (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशैः) सब पाशों [बन्धनों] से (मुच्यते) मुक्त हो जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।। १५ ।।

एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भ अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ १६ ॥
यजु० ३१/४

शब्दार्थ–(जनाः) हे जनो [विद्वानो] ! (एषः) यह (ह) प्रसिद्ध (देवः) परमात्मदेव (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशाओं उपदिशाओं [अर्थात् सब ओर] (अनु) अनुकूलता से [ठीक तौर पर अणु-अणु में] [व्यापक होकर] (सः उ) वही (गर्भे) गर्भ [प्राणियों के हृदय] के (अन्तः) बीच में (पूर्वः) पूर्व [कल्प के आदि में–प्रथम] (ह) निश्चय से (जातः) विद्यमान [प्रकटता को प्राप्त हुआ] [और] (सः एव) वही (जातः) प्रसिद्ध हुआ [और] (सः) वह (जनिष्यमाणः) [आगामी कल्पों में भी] प्रथम प्रसिद्धता को प्राप्त होगा। (सर्वतोमुखः) सर्वतोमुख [सब ओर अन्तर्यामी रूप से उपदेष्टा और सब कार्य बिना अवयवों के करने वाला] (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ (तिष्ठति) अचल सर्वत्र स्थित है [वही तुम सबका उपास्य और जानने योग्य है] ।। १६ ।।

यो देवोअग्नौ योअप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ–(यः) जो (देवः) परमात्मदेव (अग्नौ) अग्नि में है, (यः) जो (अप्सु) जलों में है, (यः) जो (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) जगत् में (आविवेश) प्रविष्ट [व्यापक] हो रहा है, (यः) जो (ओषधीषु) औषधियों में [और] (यः) जो (वनस्पतिषु) वनस्पतियों में [व्यापक हो रहा है] (तस्मै) उस (देवाय) परमात्मदेव को (नमो नमः = नमः + नमः) [हमारा] बारम्बार नमस्कार हो ।। १७ ।।

## तृतीयोऽध्यायः

**य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः।**
**य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) जो (एकः) एक ही [अद्वितीय-असहाय्य] (जालवान्) [मायारूप] जाल को बिछाने वाला (ईशनीभिः) अपनी शासकीय शक्तियों से (ईशते) सब संसार पर स्वामित्व वा शासन करता है और (सर्वान्) सब (लोकान्) [पृथिवी आदि] लोकों को (ईशनीभिः) अपनी [महान्] शक्तियों से (ईशते) नियम में चला रहा है, (यः) जो (एकः) एक (एव) ही (उद्भवे) जगत् की उत्पत्ति (च) और (सम्भवे) स्थिति में [समर्थ है] (एतत्) इस [ब्रह्म] को (ये) जो (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) अमृत [अर्थात् जन्म-मरण से रहित] (भवन्ति) हो जाते हैं ॥ १ ॥

**एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।**
**प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥**

**शब्दार्थ**–(रुद्रः) रुद्ररूप [दुष्टों पर क्रोधकारी ब्रह्म] (एकः) एक (हि) ही है। (द्वितीयाय) ब्रह्म दो [वा इससे अधिक] कहने वाले (न तस्थुः) स्थित [टिक] नहीं सकते। [अर्थात् निश्चय से रुद्ररूप ब्रह्म एक ही है।] (यः) जो (इमान्) इन (लोकान्) लोकों को (ईशनीभिः) अपनी महान् शासकीय शक्तियों से (ईशते) अपने स्वामित्व में रखता [और नियम में चला रहा है वह] (प्रत्यङ्) प्रत्येक (जनान्) व्यक्ति के अन्तरात्मा में (तिष्ठति) स्थित है और (विश्वा) सारे (भुवनानि) भुवनों [लोकों] को (संसृज्य) रचकर (गोपाः) रक्षा [स्थिति] करने वाला ब्रह्म (अन्तकाले) अन्तकाल में [सृष्टि की स्थिति के पश्चात्] (सञ्चुकोच) इन्हें समेट लेता

है [अर्थात् वही एक ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति वा प्रलय का करने वाला है और वही एक उपास्य है।] ॥ २ ॥

**विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।**
**सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देवऽ एकः ॥ ३ ॥**

यजु० १७/१९

**शब्दार्थ**–[जो] (विश्वतश्चक्षुः) सब संसार का द्रष्टा (उत) और (विश्वतोमुखः) सर्ववक्ता अर्थात् सबका अन्तर्यामीरूप से उपदेष्टा [वा] (विश्वतोबाहुः) सर्वधारक वा सब प्रकार अनन्त बल वा पराक्रम से युक्त (उत) तथा (विश्वतस्पात्) सर्वत्र पग वाला अर्थात् सर्वंगत वा सर्वव्यापक [है] [वही] (एकः) एक ही असहाय अद्वितीय (देवः) स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा (द्यावाभूमी) सूर्यपृथिव्यादि लोकों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (बाहुभ्याम्) अनन्त बल वा पराक्रमरूप बाहुओं से (पतत्रैः) [सब जीवों को] सुख दुःख रूपं फलों से (संधमति) सम्यक् [यथायोग्य] कम्पायमान अर्थात् जन्म-मरणादि को प्राप्त करा रहा है ॥ ३ ॥

**यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।**
**हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) जो [ब्रह्म] (देवानाम्) धार्मिक विद्वान् लोगों, दिव्यगुणयुक्त इन्द्रियों वा लोक लोकान्तरादि का (प्रभवः) रचने वाला (च) और (उद्भवः) उनका पालन वा रक्षा करने वाला, (विश्वाधिपः) सारे विश्व का राजा [स्वामी], (रुद्रः) रुद्र [दुष्टों को रुलाने वाला], (महर्षिः) महर्षि [महान् क्रान्तदशी, वेदज्ञान देने वाला] [सर्वज्ञ] [और जिसने] (पूर्वम्) पूर्व ही सृष्टि की आदि में (हिरण्यगर्भम्) हिरण्यगर्भ सूर्यादि प्रकाशमय लोकों वा प्रकाश को (जनयामास)उत्पन्न किया (सः) वह [परमात्मा] (नः) हमको (शुभया) शुभ [मेधा और] (बुद्ध्या) बुद्धि से (संयुनक्तु) संयुक्त करे ॥ ४ ॥

**या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।**
**तया नस्तनुवा शान्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥५॥**

यजु० १६/२

**शब्दार्थ**–(गिरिशन्त) हे वेदवाणी [सत्योपदेश] से सुख पहुंचाने वाले! (रुद्र) हे रुद्र [दुष्टों को न्याय दण्ड देकर रुलाने वाले] भयंकर परमात्मा! (या) जो (ते) तेरी [अघोरा) घोर उपद्रव से रहित शान्त (अपापकाशिनी) सत्य धर्मों को प्रकाशित करने वाली (शिवा) कल्याणकारिणी (तनूः) तनु [विस्तृत स्वरूप] है [तया] उसी (शान्तमया) शान्तमय (तनुवा) विस्तृत स्वरूप से (नः) हमको (अभिचाकशीहि) देखो अर्थात् कृपादृष्टि करो [सब प्रकार से कृपया हमें ज्ञान विज्ञान से संयुक्त करो जिससे हमें ऐहिक और पारमार्थिक सुख का शीघ्र लाभ हो] ॥५॥

**यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।**
**शिवां गिरित्र! तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥६॥**

यजु० १६/३

**शब्दार्थ**–(गिरिशन्त) हे वेदवाणी द्वारा हमें सुख देने वाले [ईश्वर]! [याम्] जिस (इषुम्) [अनन्तशक्तिरूप] बाण को (अस्तवे) फेंकने के लिए (हस्ते) आप हाथ में अर्थात् अपने अन्दर (बिभर्षि) धारण करते हो (ताम्) उस [बाण] को (शिवाम्) मंगलकारी (कुरु) कर अर्थात् हमारी सर्वथा रक्षा कर। (गिरित्र) हे वेदोपदेश को करने वाले [ईश्वर]! (पुरुषम्) पुरुषार्थयुक्त मनुष्य वा (जगत्) संसार [सृष्टि] को (मा) मत [न] (हिंसीः] मार [हिंसाकर] अर्थात् कृपया इन सबकी रक्षा कर ॥६॥

**ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथा निकायं सर्वभूतेषु गूढम्।**
**विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वामृता भवन्ति ॥७॥**

**शब्दार्थ**–(ततः) उस [ब्रह्माण्ड] से (परम्) परे [अर्थात् ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त] ब्रह्म [जो कि] (परम्) सर्वोत्कृष्ट [वा] (बृहन्तम्) महान् (यथानिकायम्) [शरीर में] यथास्थान (सर्वभूतेषु) सब [चर-अचर] भूतों में (गूढम्) छिपा हुआ

वर्तमान अन्तर्यामी (विश्वस्य) जगत् का (एकम्) एक [ही स्वामी], (परिवेष्टितारम्) सब विश्व को लपेटने वाला [फेरे हुए] [और] (ईशम्) स्वामी [है] (तम्) उस [ब्रह्म] को (ज्ञात्वा) जानकर [धार्मिक विद्वान योगी लोग] (अमृता:) अमृत [मुक्त] (भवन्ति हो जाते हैं) ।। ७ ।।

**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।**
**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।। ८ ।।**

**शब्दार्थ**–[हे जिज्ञासुओ !] (अहम्) मैं [योगी] (एतत्) इस [पूर्वोक्त] (महान्तम्) महान् [सबसे बड़े] (आदित्यवर्णम्) स्वप्रकाश स्वरूप [विज्ञानस्वरूप] (तमस:) अविद्यान्धकार से (परस्तात्) परे [रहित] (पुरुषम्) पूर्ण जगदीश्वर को [वेद] जानता हूं। (तम्) उसको (एव) ही (विदित्वा) जानकर (मृत्युम्) [मनुष्य] मृत्युदु:ख को (अति एति) उल्लंघन [पार] कर सकता है। (अन्य:) [बिना उसके जाने] और कोई (पन्था:) मार्ग (अयनाय) मुक्ति के लिए (न) नहीं (विद्यते) जाना जाता ।। ८ ।।

**यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।**
**वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।। ९ ।।**

**शब्दार्थ**–(यस्मात्) जिससे (परम्) परे [दूर] अथवा (अपरम्) पीछे (किञ्चित्) कुछ भी (न अस्ति) नहीं है। (यस्मात्) जिससे (अणीय:) सूक्ष्म (किञ्चित्) कोई (न) नहीं [और] (न) ही (ज्याय:) बड़ा (अस्ति) है [जो] (दिवि) आकाश में (वृक्ष इव) वृक्ष की तरह (एक:) अकेला ही (स्तब्ध:) निश्चल (तिष्ठति) स्थिर वर्त्तमान है। (तेन) उन (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा से (इदम्) यह (सर्वम्) सम्पूर्ण जगत् (पूर्णम्) पूरा (भरा पड़ा) है अर्थात् सबमें वह पूर्णतया व्यापक हो रहा है ।। ९ ।।

**ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्।**
**य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ।। १० ।।**

**शब्दार्थ**–(तत:) उस [कार्यरूप जगत्] से (तत्) जो (उत्तरतरम्) परे से परे [अर्थात् इस जगत् से परे जो कारण रूप

प्रकृति है उससे भी परे] [ब्रह्म] है। (तत्) वह (अरूपम्) रूप [काया] रहित [और] (अनामयम्) [जरामृत्यु आदि] व्याधि से मुक्त है। (ये) जो मनुष्य (एतत्) इस [ब्रह्म] को (विदुः) जान लेते हैं [अर्थात् ब्रह्मज्ञानी] (अमृताः) [मुक्त] (भवन्ति) हो जाते हैं (अथ) और (इतरे) दूसरे (दुःखम्) दुःख को (एव) ही [अपि] निश्चय से (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

**सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।**
**सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥ ११ ॥**

**शब्दार्थ**–(सर्वाननशिरोग्रीवः = सर्व + आनन + शिरः + ग्रीवः) सर्वत्र मुख, सिर वा ग्रीवा वाला [अर्थात् सब का उपदेष्टा, सर्वज्ञ वा सर्वव्यापक] अथवा जिसमें सब प्राणियों के मुख, शिर वा ग्रीवा स्थित हैं (और) (सर्वभूतगुहाशयः) सब प्राणियों की हृदय-गुहा में सोने वाला [अर्थात् अन्तर्यामी रूप से व्यापक], (सर्वव्यापी) सर्वव्यापक [है] (सः) वह (भगवान्) भगवान् [ऐश्वर्यवान्] [है] (तस्मात्) इस कारण [वह] (सर्वगतः) सब जगह पहुंचा हुआ है और (शिवः) कल्याणकारी [ऐहिक और पारमार्थिक सुख का देने वाला है] ॥ ११ ॥

**महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्त्तकः।**
**सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥ १२ ॥**

**शब्दार्थ**–(एषः) यह ब्रह्म (वै) निश्चय से (महान्) महान् [अनन्त], (प्रभुः) सब का स्वामी, (पुरुषः) सबमें परिपूर्ण, (सत्त्वस्य) सत्य धर्म का (प्रवर्तकः) प्रवर्तक, (अव्ययः) अविनाशी, (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप [और] (इमाम्) इस (सुनिर्मलाम्) अतिनिर्मल (प्राप्तिम्) (मोक्षरूप), प्राप्य-लक्ष्य का (ईशानः) स्वामी है ॥ १२ ॥

**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।**
**हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १३ ॥**

**शब्दार्थ**–(जनानाम्) मनुष्यों के (अङ्गुष्ठमात्रः) अङ्गुष्ठमात्र (हृदये) हृदय में (अन्तरात्मा) जीवात्मा के अन्दर (सदा) सर्वदा (पुरुषः) पूर्ण ब्रह्म (सन्निविष्टः) स्थित [विद्यमान] है। [वह] (हृदा) हृदय (मनीषा) बुद्धि व

(मनसा) मन से (अभिक्लृप्तः) प्राप्य [जानने योग्य] है। (ये) जो (एतत्) इसको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) अमर [मुक्त] (भवन्ति) हो जाते हैं॥ १३ ॥

**सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।**
**स भूमिं विश्वतो स्पृत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्॥ १४ ॥**

यजु० ३१/१

**शब्दार्थ**–(सहस्रशीर्षा) हजारों [अर्थात् असंख्य] जीवों के सिर हैं जिसमें अथवा जो सर्वज्ञ है, [सहस्राक्षः] हजारों [अर्थात् असंख्य] जीवों की आँखें हैं जिसमें अथवा जो सर्वद्रष्टा है, (सहस्रपात्) हजारों (अर्थात् असंख्य) जीवों के पाद हैं जिसमें अथवा जो सर्वगत सर्वव्यापक है (सः) वह (पुरुषः) पूर्ण ब्रह्म (सर्वतः) सब ओर से (भूमिम्) भूगोल अर्थात् सारे प्रकृति रूप जगत् को [में] (स्पृत्वा) व्यापक होकर (दशाङ्गुलम्) दशाङ्गुल [अर्थात् पाँच स्थूल वा पाँच सूक्ष्म भूतों वाले जगत्] को (अत्यतिष्ठत्–अति + अतिष्ठत्) उल्लंघन कर स्थित है अर्थात् इस सकल जगत् के भीतर और बाहर भी परिपूर्ण व्यापक हो रहा है॥ १४ ॥

**पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।**
**उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ १५ ॥**

यजु० ३१/२

**शब्दार्थ**–(यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (च) और (यत्) जो (भव्यम्) उत्पन्न होने वाला (उत) और (यत् जो (अन्नेन) पृथिव्यादि से (अतिरोहति) अत्यन्त बढ़ता [व्यतिरिक्त होता] है (इदम्) इस (सर्वम्) सारे [प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप जगत्] को (अमृतत्त्वस्य) अविनाशी मोक्ष सुख का (ईशानः) स्वामी [अधिष्ठाता] (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा (एव) ही [रचता है अन्य कोई नहीं]॥ १५ ॥

**सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।**
**सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ १६ ॥**

**शब्दार्थ**–[यह ब्रह्म] (सर्वतः) सब ओर [सर्वत्र] (पाणिपादम्) हाथ [अनन्त बल] वा पाद [सर्वगत अनन्त

विद्यमानता] वाला, (सर्वतः) सब ओर (अक्षिशिरोमुखम्–अक्षि + शिरः मुखम्) आँख वाला [सर्वद्रष्टा], शिर [अनन्त ज्ञान वाला], मुख [अन्तर्यामी रूप में सबको उपदेश देने वाला], (सर्वतः) सब ओर (श्रुतिमत्) कानों [श्रवणशक्ति] वाला, (लोके) संसार में (सर्वम्) सबको (आवृत्य) ढांप [घेर] कर [अर्थात् सब में व्यापक होकर] (तिष्ठति) स्थित हो रहा है ।। १६ ।।

**सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।**
**सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ १७ ॥**

**शब्दार्थ**–[वह ब्रह्म] (सर्वेन्द्रियगुणाभासम्–सर्व + इन्द्रिय + गुण + आभासम्) [बिना भौतिक इन्द्रियों के] सब इन्द्रियों के गुणों के आभास वाला [ज्ञान अर्थात् सुनने, देखने आदि की शक्ति वाला], (सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) सब इन्द्रियों के गोलकों से रहित, (सर्वस्य) सबके (प्रभुम्) स्वामी [अधिष्ठाता], ईशानम्) परमैश्वर्यवान् [और] (सर्वस्य) सबका (बृहत्) महान् (शरणम्) आश्रयस्थान है ।। १७ ।।

**नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।**
**वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ १८ ॥**

**शब्दार्थ**–(नवद्वारे) नौ द्वारों वाली (पुरे) शरीररूपी नगरी में (देही) देह का स्वामी [देहधारी] (हंसः) जीवात्मा (बहिः) बाहर जाने को (लेलायते) लेलायत [उत्सुक] होता है [परन्तु वह ब्रह्म सदा मुक्त] (सर्वस्य) समस्त (स्थावरस्य) अचर (च) वा (चरस्थ) चर जंगमी (लोकस्य) जगत् का [वशी] वशी [वश अर्थात् नियम में रखने वाला है] ।। १८ ।।

**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।**
**स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम् ॥ १९ ॥**

**शब्दार्थ**–[परमेश्वर के] (अपाणिपादः) हाथ–पाँव नहीं हैं [परन्तु] (ग्रहीता) अपने शक्तिरूप हाथ से सबका ग्रहण करता [और] (जवनः) सर्वव्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान् गतिशील, (अचक्षुः) चक्षु के गोलक नहीं [परन्तु]

(पश्यति) सबको यथावत् देखता, (अकर्णः) कान नहीं [परन्तु] (शृणोति) [सबकी बातें] सुनता है, [अन्तःकरण नहीं परन्तु] (सः) वह (विश्वम्) सब जगत् को (वेत्ति) जानता है (च) और (तस्य) उसको (वेत्ता) [अवधिसहित] जानने वाले कोई भी नहीं। (तम्) उसी को (अग्रयम्) सबसे श्रेष्ठ, (महान्तम्) सबसे महान् (पुरुषम्) [सबसे पूर्ण होने से] पुरुष (आहुः) कहते हैं ॥ १९ ॥

**अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।**
**तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥ २० ॥**

**शब्दार्थ**–[वह ब्रह्म] (अणोः) अणु [सूक्ष्म] से भी (अणीयान्) [सूक्ष्म], [और] (महतः) महान् [बड़े] से भी (महीयान्) महान् अणु [बड़ा] [है]। (आत्मा) [वह] परमात्मा (अस्य) इस (जन्तोः) जीव की (गुहायाम्) हृदयरूपी गुफा में (निहितः) छिपा हुआ स्थित है। (तम्) उस (अक्रतुः) [सकाम अर्थात् सुख-दुःख वाले] कर्म रहित (महिमानम्) महान् (ईशम्) परमैश्वर्यवान् स्वामी को (वीतशोकः) शोकरहित पुरुष (धातुः) उस सर्वधारक [परमात्मा] की (प्रसादात्) कृपा से ही (पश्यति) साक्षात् करता है ॥ २० ॥

**वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।**
**जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥ २१ ॥**

**शब्दार्थ**–[ब्रह्मज्ञानी कहता है कि] (अहम्) मैं (एतम्) इस (अजरम्) जरा रहित, (पुराणम्) सनातन [अनादि], (सर्वात्मानम्) सबके [अन्तर्यामी रूप से] आत्मा, [तथा] (विभुत्वात्) सर्वव्यापकत्व के कारण (सर्वगतं) सर्वगत (जन्मनिरोधम्) जन्ममरण के बन्धन से रहित परमेश्वर को [वेद] जानता हूं (ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी (यस्य) जिसका [प्रवदन्ति] व्याख्यान [बखान] करते हैं। (हि) निश्चय से [नित्यम्] नित्य ब्रह्म का (प्रवदन्ति) वर्णन करते हैं ॥ २१ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः

**य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।**

**विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) जो (एकः) [अद्वितीय ब्रह्म] (अवर्णः) स्वयं रंग, रूप अर्थात् आकृति काया रहित [है किन्तु] (शक्तियोगात्) अपनी अनन्त शक्ति [बल-सामर्थ्य] के योग से (बहुधा) बहुत प्रकार से (अनेकान्) अनेक (वर्णान्) रंग-रूप-आकार वाले चराचर (विश्वम्) जगत् को (निहितार्थः) स्वोद्देश्य [ज्ञानयुक्त प्रयोजन से] (दधाति) रचता व धारण करता है (च) और (सः) वह (अन्ते) सृष्टिकाल समाप्त होने पर (विचैति) [इस जगत् का] संहार [प्रलय] करता है। (सः) वह ही (देवः) आनन्दस्वरूप परमात्मा (आदौ) सृष्टि के आदि में (नः) हमें (शुभया) शुभ (बुद्ध्या) बुद्धि से (संयुनक्तु) संयुक्त करे अर्थात् मेधा बुद्धि प्रदान करे ॥ १ ॥

**तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।**

**तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ॥ २ ॥**

**शब्दार्थ**–(तत्) वह [परमेश्वर] (एव) ही (अग्निः) [आनन्द स्वरूप तथा पूज्यतम होने से] "अग्नि" [नाम वाला कहा जाता है] (तत्) वह ही (आदित्यः) [अविनाशी तथा स्वप्रकाशस्वरूप होने से] आदित्य" [कहा जाता है]। (तत्) वह ही (वायुः) [सबका धारण करने वाला अनन्त बलवान् होने तथा प्राणों से भी प्रिय होने से] "वायु" [कहा जाता है] (उ) और (तत्) वह ही (चन्द्रमाः) [स्वयं आनन्दस्वरूप होने तथा अपने सेवकों को आनन्द देने वाला होने से] "चन्द्रमा" [कहा जाता है]। (तत्) वह ही (शुक्रम्) [सर्वजगदुत्पादक होने से] "शुक्र" [कहा जाता है]। (तत्)

वह ही (ब्रह्म) [सबसे बड़ा होने से] "ब्रह्म" [कहा जाता है] [और] (तत्) वह ही (तत्) वह (आपः) जल है (प्रजापतिः) [सब जगत् का पति अर्थात् स्वामी वा पालक होने से] "प्रजापति" [कहाता है]। [परमात्मा के अनेक गुण हैं इसलिए उसके अग्नि आदित्यादि अनेक नाम हैं। ये नाम केवल भौतिक पदार्थों के ही नहीं है ॥ २ ॥

**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।**
**त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ ३ ॥**

**शब्दार्थ**–[ईश्वर भक्त अपने आपको कहता है]–(त्वम्) तू (स्त्री) [कभी] स्त्री शरीरधारी [और कभी] (त्वम्) तू (पुमान्) पुरुष शरीरधारी (असि) हो जाता है। (त्वम्) तू [कभी] (कुमारः) कुमार का शरीर [धारण कर लेता है] (उत वा) और कभी (कुमारी) कुमारी का। (त्वम्) तू [कभी] (जीर्णः) जीर्ण [बूढ़ा] हुआ (दण्डेन) [लाठी] से (वञ्चसि) चलता फिरता है। (त्वम्) तू (जातः) जन्म को प्राप्त हुआ (विश्वतोमुखः) नानायोनिगत (भवसि) हो जाता है ॥ ३ ॥

[भाव यह है कि जीवात्मा नानाविध योनियों में जन्म लेता है और मोक्ष प्राप्त करने पर ही जन्म-मरण के बन्धन से रहित होता है]।

**नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।**
**अनादिस्त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥**

**शब्दार्थ**–[अब भक्त प्रकृति को सम्बोधित करके कहता है कि] (अनादिः) हे अनादि [कारणरूप प्रकृति] (त्वम्) तू (विभुत्वेन) विशाल [व्यापक रूप से] (वर्तसे) विद्यमान है (यतः) जिससे (नीलः) नीलवर्ण (पतङ्गः) सूर्य, (हरितः) हरितवर्ण, (लोहिताक्षः) रक्तवर्ण (तडिद्गर्भः) मेघ, (ऋतवः) ऋतुएं, (समुद्राः) समुद्र [वा] (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकलोकान्तर (जातानि) उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥

**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।**
**अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥५॥**

**शब्दार्थ**–(एकम्) एक (अजाम्) अनादि (लोहितशुक्ल कृष्णाम्) सत्त्व, रज, तमोगुण रूप प्रकृति (सरूपाः) [परिणामिनी होने से] अपने जैसी (बह्वीः) बहुत (प्रजाः) प्रजाओं [कार्यरूप सृष्टि] को (सृजमानाम्) उत्पन्न करती हुई को [एकः] एक (हि) ही (अजः) अनादि [जीवात्मा] (जुषमाणः) सेवता हुआ (अनुशेते) उसके साथ लिपटता है और फंसता है, [परन्तु] (अन्यः) एक और दूसरा (अजः) अनादि [परमात्मा] (एनाम्) इसे (भुक्तभोगाम्) [जीवद्वारा] भोगी जा रही [प्रकृति] को (जहाति) छोड़ देता है अर्थात् वह [परमात्मा] इसमें न फंसता और न भोग करता है। [इस श्लोक में परमात्मा जीवात्मा वा प्रकृति तीनों का वर्णन है] ॥५॥

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।**
**तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥६॥**

**शब्दार्थ**–[जो] (द्वा) [ब्रह्म और जीव] दोनों (सुपर्णा) [चेतनता और पालनादि गुणों रूप] सुन्दर पंखों वाले सदृश, (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त, (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त [अर्थात् प्रेमयुक्त सनातन अनादि हैं] और (समानम्) एक ही (वृक्षम्) [कार्य प्रकृतिरूप] वृक्ष का (परिषस्वजाते = परि + सस्वजाते) सब ओर आश्रय [आलिंगन] करके बैठे हैं। (तयोः) उन दोनों में से (अन्य) ब्रह्म से भिन्न दूसरा (जीव) (पिप्पलम्) (इस वृक्ष रूप] संसार में पाप पुण्यरूप कर्मों के फलों को (स्वाद्वत्ति–स्वादु + अत्ति) अच्छे प्रकार स्वाद लेकर भोगता है और (अन्यः) दूसरा [परमात्मा] (अनश्नन्) [कर्मों के फलों को] न भोगता हुआ (अभिचाकशीति) सर्वत्र प्रकाशमान् हो रहा है [अथवा सब ओर से जीव के कर्मों को साक्षीरूप देखता है]। [इस वेद मन्त्र में बताया गया है कि जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न रूप

तीनों अनादि हैं। ईश्वर प्रकृति में व्यापक हो रहा है और जीव भी उसमें लिप्त हुआ है] ॥ ६ ॥

**समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।**
**जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ ७ ॥**

**शब्दार्थ**–(समाने) एक ही (वृक्षे) [प्रकृति रूप] वृक्ष पर बैठे [दोनों में से] (पुरुषः) जीवात्मा (निमग्नः) निमग्न हुआ (अनीशया) अपने असामर्थ्य के कारण (मुह्यमानः) अज्ञानवश (शोचति) शोक करता है। (यदा) [परन्तु] जब (अन्यम्) दूसरे (जुष्टम्) शान्त [प्रसन्न] [वा] (ईशम्) समर्थ ब्रह्म को [जानकर] (अस्य) इस [ब्रह्म] की (महिमानम्) महिमा को (पश्यति) देखता है (इति) तो (वीतशोकः) शोकरहित हो जाता है ॥ ७ ॥

**ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।**
**यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ८ ॥**

ऋ० १/१६४/३९

**शब्दार्थ**–(यस्मिन्) जिस (ऋचः) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित, (अक्षरे) अविनाशी, (परमे) परम [सर्वोत्कृष्ट], (व्योमन्) आकाशवत् सर्वव्यापक [ईश्वर] में (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् और पृथिवी सूर्यादि सब लोक (अधिनिषेदुः) आध्येरूप से स्थित हैं। (तत्) उस [ब्रह्म] को (यः) जो (न) नहीं [वेद] जानता (ऋचः) [वह] ऋग्वेदादि से (किम्) क्या कुछ (करिष्यति) कर सकता है [क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है] ? कुछ नहीं ? [किन्तु] (ये) जो (तत्) [वेदों को पढ़के धर्मात्मा योगी होकर] उस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं, (ते) वे (इत्) ही (इमे) इस ब्रह्म में (समासते) अच्छी प्रकार स्थित होते हैं [अर्थात् शान्ति पाते और मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं] ॥ ८ ॥

**छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।**
**अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो माया सन्निरुद्धः ॥ ९ ॥**

**शब्दार्थ**—(छन्दांसि) छन्द [वेद], (यज्ञाः) नैत्यिक [पञ्च] महायज्ञ, (क्रतवः) अन्य यज्ञरूप कर्म, (व्रतानि) सत्यादिव्रत, (भूतम्) जो हो चुका है, (भव्यम्) जो आगे होगा (च) और (यत्) जो कुछ (वेदाः) (वदन्ति) कहते हैं (एतत्) इस (विश्वम्) सब जगत् को (अस्मान्) और हम सब [जीवों के शरीरों] को (मायी) मायापति [प्रकृति का स्वामी परमेश्वर] (सृजते) रचता है (च) और (तस्मिन्) उसमें (अन्यः) अन्य [परमेश्वर से भिन्न दूसरा अर्थात् जीवात्मा] (मायया) माया जाल के बन्धन से (सन्निरुद्धः) कैद अर्थात् फंसा हुआ है ॥ ९ ॥

**मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।**
**तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ १० ॥**

**शब्दार्थ**—(मायाम्) माया को (तु) तो (प्रकृतिम्) प्रकृति (विद्यात्) जाने (तु) और (मायिनम्) मायी को (महेश्वरम्) महेश्वर [परमात्मा] [जाने]। (तस्य) उसके (अवयवभूतैः) एकदेशस्थ पंच अंगभूत अर्थात् महाभूतों से (इदम्) यह (सर्वम्) सब [जगत्] जगत् (व्याप्तम्) व्याप्त हो रहा है ॥ १० ॥

**यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम्।**
**तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ११ ॥**

**शब्दार्थ**—(यः) जो (एकः) अकेला ही (योनिं, योनिम्) प्रत्येक योनि [जन्म-जाति] का (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है [च] और (यस्मिन्) जिसमें (इमम्) यह (सर्वम्) सब [जगत्] (सम् एति) समाता है (च) और [जिससे यह फिर] (विचैति) प्रलय को प्राप्त हो जाता है (तम्) उस (ईशानम्) सकल ऐश्वर्यवान् सर्वशक्तिमान् स्वामी (वरदम्) वरदाता [श्रेष्ठ, ऐहिक और पारमार्थिक सुख देने वाले], (देवम्) देव [आनन्दस्वरूप वा आनन्ददाता], (ईड्यम्) बहुत स्तुति के

योग्य [अनन्तगुण सम्पन्न ब्रह्म] को (निचाय्य) निश्चय करके [अच्छी प्रकार जानकर [मनुष्य] (अत्यन्तम्) अत्यन्त (शान्तिम्) शान्ति को (एति) प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

**यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।**
**हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु ॥ १२ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) जो (देवानाम्) [पृथिवी, सूर्यादि व धार्मिक विद्वानादि] देवताओं का (प्रभवः) उत्पत्ति रचयिता (च) और (उद्भवः) उन्नतिकर्त्ता [पालक] (विश्वाधिपः) सारे जगत् का अधिपति [सर्वेश्वर], (रुद्रः) दुष्टों को उनके पाप कर्मों का दण्ड देकर रुलाने वाला [और] (महर्षिः) अनन्त ज्ञान वाला क्रान्तदर्शी [भविष्यद्रष्टा] है [उस] (जायमानम्) [सृष्टि रचना द्वारा] प्रतीत हुए (हिरण्यगर्भम्) सूर्यादि प्रकाशमय लोकों का उत्पत्ति, स्थिति स्थान [ज्योतिर्मय] को (पश्यत) देखो [अर्थात् अच्छी प्रकार जानो] (सः) वह (नः) हमें (शुभया) शुभ (बुद्धया) बुद्धि से (संयुनक्तु) संयुक्त करे। [ऐसा ही श्लोक तीसरे अध्याय में चौथी संख्या पर आया है वहाँ भी अर्थ देख लेवें] ॥ १२ ॥

**यो देवानामधिपो यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः।**
**य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) जो (देवानाम्) देवों [परम विद्वानों वा अन्य सब दिव्य पदार्थों] का (अधिपः) स्वामी [है] (यस्मिन्) जिस में (लोकाः) सब लोक पृथिवी सूर्यादि (अधिश्रितः) स्थित है। (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दुपाये [मनुष्य आदि] (च) और (चतुष्पदः) चौपाये [गौ आदि] का (ईशे) ईश्वर [स्वामी] है (कस्मै) उस सुखस्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्य के देने हारे प्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा के लिए [हविषा] अत्यन्त श्रद्धा वा प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति करें अर्थात् आत्मादि सर्वसमर्पण से उसकी यथावत् पूजा करें ॥ १३ ॥

**सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।**
**विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १४ ॥**

**शब्दार्थ**–[जो] (कलिलस्य) गहन (विश्वस्य) संसार के (मध्ये) मध्य (सूक्ष्मातिसूक्ष्मम्) सूक्ष्म से भी सूक्ष्म (अनेकरूपम्) अनेक रूप पदार्थों का (स्रष्टारम्) रचयिता, [तथा] (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् का (एकम्) एक ही अनन्त (परिवेष्टितारम्) आवृत्त करने [ढांपने] वाला है [उस] (शिवम्) कल्याणकारी परमात्मा को (ज्ञात्वा) जानकर ही [मनुष्य] (अत्यन्तम्) अत्यन्त (शान्तिम्) शान्ति [सुख] को (एति) प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

**स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः।**
**यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥ १५ ॥**

**शब्दार्थ**–(सः) वह [ब्रह्म] (एव) ही (काले) समय पर (भुवनस्य) सृष्टि की (गोप्ता) रक्षा करने वाला है [और] (विश्वाधिपः) सम्पूर्ण जगत् का अधिपति [स्वामी] है [तथा] (सर्वभूतेषु) सब भूतों प्राणियों में (गूढः) अन्तर्यामी रूप से स्थित है (यस्मिन्) जिसमें (ब्रह्मर्षयः) ब्रह्मज्ञानी ऋषि (च) और (देवताः) धार्मिक विद्वान् लोग (युक्ताः) योगसाधना में लगे हुए हैं (तम्) उसी [ब्रह्म] को (एव) ही (ज्ञात्वा) जानकर [मनुष्य] (मृत्युपाशान्) मृत्यु के पाशों को [अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन को] (छिनत्ति) काट देता है ॥ १५ ॥

**घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।**
**विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १६ ॥**

**शब्दार्थ**–(घृतात्) घृत से (परम्) परे [ऊपर] (मण्डमिव) मण्ड [तरल घी] की तरह (अतिसूक्ष्मम्) बहुत सूक्ष्म, (शिवम्) कल्याणकारी, (सर्वभूतेषु) सब प्राणियों में (गूढम्) छिपे हुए [अन्तर्यामी रूप से] हृदय में आत्मा के अन्दर व्याप्त, (विश्वस्य) जगत् को (एकम्) एक ही (परिवेष्टितारम्) सब ओर आवृत्त करने [ढांपने] वाले (देवम्) सकल ऐश्वर्य के देने हारे प्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ ब्रह्म को (ज्ञात्वा) जानकर ही (सर्वपाशैः) मनुष्य सब पाशों [जन्म मरण के बन्धनों] से

(मुच्यते) छूट जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है॥ १६ ॥

**एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।**
**हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १७ ॥**

**शब्दार्थ**–(एषः) यह (देवः) प्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ ब्रह्म (विश्वकर्मा) सम्पूर्ण जगत् का रचयिता, (महात्मा) सबसे महान् आत्मा [परमात्मा] (सदा) सर्वदा, (जनानाम्) प्राणियों के (हृदये) हृदय में (सन्निविष्टः) विद्यमान [और] (हृदा) हृदय [चाहना] अर्थात् उत्कट इच्छा (मनीषा) बुद्धि [व] (मनसा) मन [मनन] से (अभिक्लृप्तः) पाया जाने वाला है। (ये) जो मनुष्य (एतत्) इस [ब्रह्म] को (विदुः) जान लेते हैं (ते) वे [अमृताः] मुक्त (भवन्ति) हो जाते हैं॥ १७ ॥

**यदातमस्तन्न दिवा न रात्रिः न सन्न चासच्छिव एव केवलः।**
**तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥ १८ ॥**

**शब्दार्थ**–(यदा) जब (अतमः) तम [तमोगुण अर्थात् अविद्या] का अभाव हो जाता है (तत्र) वहाँ [तब] (न) न (दिवा) दिन [जैसा प्रकाश] [तथा] [न] न [ही] (रात्रिः) रात्रि जैसा अन्धकार होता है [क्योंकि उस परमात्मा का दिव्य रूप] (न) न (सत्) सत् [है] (च) और [न] न [ही] (असत्) असत् है। [वह] [केवल] एकाकी (शिवः) [कल्याणकारी परमात्मा] (एव) ही [है]। (तत्) वह [परमात्मा] (अक्षरम्) अविनाशी, (तत्) वह [उस] (सवितुः) सकलजगदुत्पादक का [स्वरूप] (वरेण्यम्) सर्वोत्कृष्ट वा ध्यान करने योग्य है (च) और (तस्मात्) उसी परमात्मा से (पुराणी) पुरातन (प्रज्ञा) बुद्धि [अथवा वेदज्ञान] (प्रसृता) फैली है [अर्थात् सनातन वेदज्ञान का प्रकाश हुआ है] ॥ १८ ॥

**नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्।**
**न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः ॥ १९ ॥**

**शब्दार्थ**–[कोई भी] (एनम्) इस [ब्रह्म] को (न) न (ऊर्ध्वम्) ऊपर से, (च) और (न) न (तिर्यञ्चम्) तिरछे से (च) और (न) न (मध्ये) मध्य [बीच] से (परिजग्रभत्) पकड़ सकता है। (तस्य) उस [ब्रह्म] की [कोई] [प्रतिमा] प्रतिमा [मूर्ति अथवा आकृति] (न) नहीं (अस्ति) है (यस्य) जिस [ब्रह्म] का (नाम) नामस्मरण [उपासना] ही (महद्यशः = महत् + यशः) महान् [बड़े] यश [कीर्ति] का करने हारा है ॥ १९ ॥

**न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।**
**हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २० ॥**

**शब्दार्थ**–(अस्य) इस [ब्रह्म] का (रूपम्) रूप (संदृशे) दृष्टि में (न) नहीं (तिष्ठति) उतरता [क्योंकि] (कश्चन) कोई भी (एनम्) इस को (चक्षुषा) चक्षु [आँखों] से (न) नहीं (पश्यति) देख पाता है। (ये) जो (एनम्) इस (हृदिस्थम्) हृदय में स्थित को (हृदा) हृदय [वा] (मनसा) मन से (एवम्) ऐसे (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) अमर [मुक्त] (भवन्ति) हो जाते हैं ॥ २० ॥

**अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते ।**
**रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥ २१ ॥**

**शब्दार्थ**–(रुद्र) हे पापियों को दण्ड देकर रुलाने वाले ईश्वर! (आप) अजन्मा हो । (इति एवम्) [आपको] ऐसे जानकर [कश्चित्] कोई भीरुः [पाप कर्म से अथवा पाप से] डरने वाला [ही] (प्रपद्यते) [आपकी] शरण में आता है। (यत्) [हे भगवान्] जो (ते) तेरा [दक्षिणम्] दक्षता [अत्यन्त चतुराई] वाला क्रियाशील (मुखम्) मुख [स्वरूप अथवा आशीर्वाद] है (तेन) उससे (माम्) मेरी (नित्यम्) सदा (पाहि) रक्षा कीजिए ॥ २१ ॥

**मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा न अश्वेषु रीरिषः।**

**वीरान् मा नो रुद्र ! भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ २२ ॥**

**शब्दार्थ**–(रुद्र) हे दुष्टों को रुलाने वाले परम न्यायाधीश ! [आप कृपया] (मा) न (नः) हमारे (तोके) सद्योजात [अभी उत्पन्न हुए बच्चे] पर [वा] (तनये) छोटे बालक पर, [मा] न (नः) हमारी (आयुषि) [पूर्ण] आयु पर, (मा) न (नः) हमारी (गोषु) गौओं पर, (मा) न (नः) हमारे (अश्वेषु) घोड़ा आदि पशुओं पर, (मा) न (नः) हमारे (वीरान्) शूरवीरों पर (रीरिषः) रोषयुक्त [और] (भामितः) क्रोधित होकर [इनको कभी] (वधीः) मारें। [हे भगवन्] (हविष्मन्तः) हम [ब्रह्म] यज्ञ के करने वाले (सदम्) सदा (त्वा) आपका (इत्) ही (हवामहे) आह्वान करते हैं। [इसमें जो 'आयुषि' शब्द आया है वेद मन्त्र में इसके स्थान पर 'आयौ' आया है। शेष कोई भेद नहीं] ॥ २१ ॥
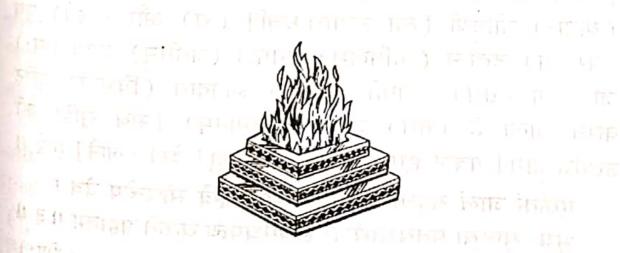
## पञ्चमोऽध्यायः

**द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याऽविद्ये निहिते यत्र गूढे।**
**क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥ १ ॥**

**शब्दार्थ**–(यत्र) जिस (अक्षरे) अविनाशी (अनन्ते) अनन्त (ब्रह्मपरे) परब्रह्म में (विद्याविद्ये) विद्या [अध्यात्मज्ञान] वा अविद्या [जड़ प्रकृति का ज्ञान] (द्वे) दोनों (तु) ही (गूढे) गूढ़ (निहित) विद्यमान हैं (तु) और (यः) जो (विद्याविद्ये) पूर्वोक्त विद्या वा अविद्या दोनों का (ईशते) ईश्वर [स्वामी अथवा आदिमूल] है (सः) वह (अन्यः) दूसरा [जीवात्मा वा प्रकृति से भिन्न] ही है। (अविद्या) प्रकृति ज्ञान [पदार्थ विद्या–भौतिक ज्ञान] (तु) तो (क्षरम्) विनाशी है [क्योंकि कार्यरूप प्रकृति विनाशी है] (तु) और (विद्या) आध्यात्मिक ज्ञान (हि) निश्चय से (अमृतम्) अविनाशी [मोक्षदायक] है ॥ १ ॥

**यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः।**
**ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥ २ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) जो [परमात्मा] (योनिं योनिम्) योनि–योनि [अर्थात् सब योनियों] का (एकः) एक ही (अवितिष्ठति) अधिष्ठाता [नियामक] है [और] (विश्वानि) सब (रूपाणि) [जीवों वा पदार्थों के] रूपों (च) और (सर्वाः) सब (योनीः) योनियों [का उत्पत्तिकर्त्ता] (च) और (अग्रे) पूर्व (प्रसूतम्) उत्पन्न (कपिलम्) कपिल (ऋषिम्) ऋषि (यः) जो हुआ (तम्) उसकी (ज्ञानैः) ज्ञानद्वारा (बिभर्ति) पुष्टि करने वाला है (तम्) उस (जायमानम्) [सब सृष्टि की उत्पत्ति द्वारा] प्रकट हुए (पश्येत्) [मुमुक्षु] देखे [जाने] ॥ २ ॥

**एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।**
**भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥ ३ ॥**

**शब्दार्थ**–(एषः) यह (देवः) दिव्यगुणयुक्त (ईशः) ऐश्वर्यवान् [स्वामी] (एकैकम्) प्रत्येक [नानाविध] (जालम्)

[संसाररूपी] जाल को (बहुधा) बहुत प्रकार से (विकुर्वन्) फैलाता हुआ (अस्मिन्) इस (क्षेत्रे) क्षेत्र [सृष्टिरचना] में (संहरति) संहार करता [प्रलय में समेट लेता] है। (पतय:) विद्वानो! (भूय:) फिर [तथा] वैसे ही (ईश:) वह ईश्वर [जगत् स्वामी] (महात्मा) महान् आत्मा [परमात्मा] (सृष्ट्वा) सृष्टि को रचकर (सर्वाधिपत्यम्) सब पर आधिपत्य [राज्य] (कुरुते) करता है [ऐसा जानो]।

**सर्वा दिशः ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान्।**
**एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥ ४ ॥**

**शब्दार्थ**–(यत् उ) जिस प्रकार (अनड्वान्) सूर्य (सर्वा:) सब (दिश:) दिशाओं, (ऊर्ध्वम्) ऊपर (अध:) नीचे (च) और (तिर्यक्) तिरछे [दायें-बायें] (प्रकाशयन्) प्रकाश करता हुआ (भ्रांजते) स्वयं प्रकाशता है (एवम्) ऐसे ही (स:) वह (देव:) परमात्मदेव [ब्रह्म] (भगवान्) परमैश्वर्यवान् (वरेण्य:) सर्वोत्कृष्ट स्वीकरणीय (एक:) अकेला ही (योनिस्वभावान्) सब [मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्षादि] योनियों के (पृथक्-पृथक्) स्वभावों का (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है [अर्थात् उन पर राज्य करता अथवा नियम से चला रहा है] ॥ ४ ॥

**यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः।**
**सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः ॥ ५ ॥**

**शब्दार्थ**–(च) और (य:) जो (स्वभावम्) [पदार्थों के] स्वभावों [गुणों को (पचति) पकाता [द्रव्यों में पृथक्-पृथक् निहित करता है] (च) और (य:) जो (विश्वयोनि:) सबका आधार (सर्वान्) सब (पाच्यान्) पकाने योग्य [पदार्थों] को (परिणमत्) पकाता [फल देता] है (य:) जो (एक:) अकेला ही (एतत्) इस (सर्वम्) सब (विश्वम्) जगत् पर (अधितिष्ठति) अध्यक्षता करता है (च) और (सर्वान्) सब (गुणान्) [सब पदार्थों वा जीवों के] गुणों को (विनियोजयेत्) विनियुक्त [स्थापित] करता है [उसी को जानकर ही हम अमर हो सकते हैं] ॥ ५ ॥

**तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्मा वेदयते ब्रह्मयोनिम्।**
**ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥ ६ ॥**

**शब्दार्थ**–(तद्) उस (वेदगुह्योपनिषत्सु = वेद + गुह्य + उपनिषत्सु) वेदों के गुह्य रहस्य की व्याख्या करने वाली उपनिषदों में (गूढम्) [ब्रह्मज्ञान] छिपा है। (तत्) उस (ब्रह्मयोनिम्) वेद के आदि मूल [प्रकाशित करने वाले] परमेश्वर का (ब्रह्मा) ब्रह्म [चारों वेदों का ज्ञाता] (वेदयते) ज्ञान कराता है। (ये) जो (पूर्वदेवाः) पहले हो चुके विद्वान् (च) और (ऋषयः) मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने (तत्) उस ब्रह्म को (विदुः) जाना (ते) वे (तन्मया) उसमें लीन हुए (वै) निश्चय से (अमृता) अमर [मुक्त] (बभूवुः) हो गये ॥ ६ ॥

**गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता।**
**स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः ॥ ७ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) जो [जीवात्मा] (गुणान्वयः) [तीन] गुणों से युक्त [रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण], (फल कर्म कर्त्ता) फल भोगने वाले कर्मों का कर्त्ता (च) और (तस्य) उस (कृतस्य) किये हुए कर्म का (सः) वह (एव) ही (उपभोक्ता) फल भोगने वाला है, (सः) वह [जीव] (विश्वरूपः) अनेक योनियों में जाकर अनेक रूपों वाला उत्पन्न होता है [और वह] (त्रिगुणः) [ऊपर कहे] तीन गुणों से युक्त [और] (त्रिवर्त्मा) तीन मार्गों वाला [उत्तम, मध्यम, अधम], (प्राणाधिपः) प्राणों का स्वामी [मृत्यु के समय प्राण जीव के साथ ही जाते हैं] (स्वकर्मभिः) अपने कर्मों के कारण [अनुसार] (सञ्चरति) भिन्न योनियों में भटकता फिरता है ॥ ७ ॥

**अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो यः।**
**बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः ॥ ८ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) [जीवात्मा] (अङ्गुष्ठमात्रः) [अंगुष्ठमात्र हृदय में वास करने के कारण] अंगुष्ठमात्र कहा जाता है [परन्तु वह] (सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितः) संकल्प [मन] व

अहंकार [बुद्धि] से युक्त (रवितुल्यरूपः) सूर्य के तुल्य प्रकाशरूप अर्थात् विशाल रूप वाला है। [वह] (आराग्रमात्रः) [वास्तव में] सुई की नोक के बराबर है [अर्थात् ! अत्यन्त सूक्ष्म है], [फिर] (अपि) भी [वह] (अपरः) अपर अर्थात् शरीर में उत्कृष्ट [अथवा परमात्मा से भिन्न] (बुद्धेः) बुद्धि के (गुणेन) गुणों [उत्कृष्टज्ञान] वा (आत्मगुणेन) आत्मा के गुणों [अपने चेतनस्वरूप] से (एव हि) ही (दृष्टः) देखा [जाना] जाता है ।। ८ ।।

**बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।**
**भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ ९ ॥**

**शब्दार्थ**–[यदि] (बालाग्रशतभागस्य) बाल के सौवें भाग का (च) फिर [उसके भी] (शतधा) सौवें भाग को (कल्पितस्य) कल्पना किये हुए का (भागः) एक हिस्सा [अर्थात् बाल के अग्रभाग के दश सहस्रवें भाग के परिमाण वाला] (सः) वह [उतना] (जीवः) जीव (विज्ञेयः) जानना चाहिए (च) और (सः) वह (आनन्त्याय) अनन्त होने के लिए अर्थात् अनन्त मोक्ष पद को प्राप्त करने के लिए (कल्पते) समर्थ होता है ।। ९ ।।

**नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।**
**यद्यच्छरीरमादत्ते तेन-तेन स रक्ष्यते ॥ १० ॥**

**शब्दार्थ**–(एषः) यह [जीवात्मा] (न) न (एव) ही (स्त्री) स्त्री [लिंगी] है [और] (न) न (पुमान्) पुरुष [लिंगी] (च) और (न) न (एव) ही (अयम्) यह (नपुंसकः) नपुंसक [लिंगी] है। (यद्यत्–यत् + यत्) जिस-जिस (शरीरम्) शरीर को [यह] (आदत्ते) ग्रहण करता है (तेन-तेन) उस उसके साथ (सः) वह [रक्ष्यते] रखा जाता है अर्थात् युक्त हो जाता है ।। १० ।।

**सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रासाम्बुवृष्ट्यात्मविवृद्धिजन्म।**
**कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ॥ ११ ॥**

**शब्दार्थ**–(देही) जीवात्मा (संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैः– संकल्पन + स्पर्शन + दृष्टि + मोहैः) संकल्प, स्पर्शन, दर्शन तथा मोह से (स्थानेषु) भिन्न-भिन्न [शरीररूपी] स्थानों में (कर्मानुगानि) कर्मानुसार (रूपाणि) रूपों [देहों] को (अभिसम्प्रपद्यते) प्राप्त होता है (च) और (अनुक्रमेण) क्रमपूर्वक (ग्रासाम्बुवृष्ट्या) अन्न-जलादि के सेवन से (आत्मविवृद्धिजन्म) [जीवात्मा के] आत्मा [शरीर तथा मन] की वृद्धि और उत्पत्ति होती है [अर्थात् वह देह वृद्धि और जन्म को प्राप्त होता है] ।। ११ ।।

**स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति।**
**क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ।। १२ ।।**

**शब्दार्थ**–(देही) जीवात्मा (स्थूलानि) स्थूल (च) और (सूक्ष्माणि) सूक्ष्म (बहूनि) बहुत (रूपाणि) रूपों [देहों] को (स्वगुणैः) अपने गुणों अर्थात् पाप-पुण्यरूप कर्मों के प्रभावों से [अर्थात् उनके अनुसार] (वृणोति) स्वीकार (ग्रहण) करता है। (अपरः) परब्रह्म परमात्मा से भिन्न [जीवात्मा] (अपि) भी (क्रियागुणैः) अपने कर्मों के गुणों [साधनों] (च) तथा (आत्मगुणैः) अपने स्वाभाविक (इच्छाद्वेषादि) गुणों के कारण (दृष्टः एव) जाना ही जाता है [जो कि] (तेषाम्) उन शरीरों के साथ (संयोगहेतुः) संयोग कराने का हेतु [कारण] होता है ।। १२ ।।

**अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम्।**
**विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।। १३ ।।**

**शब्दार्थ**–(कलिलस्य) गहन संसार के (मध्ये) मध्य [में व्यापक] [जो] (अनादि) अनादि [अजन्मा] तथा (अनन्तम्) अनन्त [अन्तरहित], (विश्वस्य) जगत् के (स्त्रष्टारम्) रचयिता, (अनेकरूपम्) विविध प्रकार के जड़ तथा चेतन जगत् के स्त्रष्टा, अनेकरूप [तथा] उनमें व्यापक, (विश्वस्य) जगत् के (एकम्) एक ही (परिवेष्टितारम्) आवृत्त करने (ढांपने) वाले [देवम्] परमात्मदेव को (ज्ञात्वा) जानकर [जीव] (सर्वपाशैः) सब जन्म-मरण के बन्धनों से (परिमुच्यते) छूट जाता है ।। १३ ।।

भावग्राह्यमनीड्याख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—(भावग्राह्यम्) भावना [श्रद्धा] से ग्रहण करने योग्य (अनीड्याख्यम्) [आश्रय की अपेक्षा न रखने वाले होने के कारण] अनीड्य नाम वाले, (भावाभावकरम्) जगत् का भाव [रचना] और अभाव [संसार का प्रलय] करने वाले (शिवम्) कल्याणकारी, (कलासर्गकरम्) [पूर्वोक्त सोलह] कलाओं की रचना करने वाले (देवम्) परमात्मदेव को (ये) जो (विदुः) जान लेते हैं (ते) वे (तनुम्) शरीर को (जहुः) छोड़कर [मुक्त हो जाते हैं] ॥ १४ ॥

## षष्ठोऽध्यायः

**स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः।**
**देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥ १ ॥**

**शब्दार्थ**–(येन) जिससे (इदम्) यह (ब्रह्मचक्रम्) ब्रह्मचक्र [सृष्टि का चक्र] (भ्राम्यते) घुमाया जाता है [अर्थात् इस सृष्टि का कारण] (एके) कई (कवयः) विद्वान् लोग (परिमुह्यमानाः) भ्रम में पड़कर (स्वभावम्) स्वभाव [कुदरत] (वदन्ति) बतलाते हैं (तथा) और (अन्ये) कई दूसरे (कालम्) काल को, (तु) परन्तु (लोके) संसार में (एषः) यह (महिमा) महिमा [बड़ाई] तो (देवस्य) परमात्मदेव की है [जिससे इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति वा प्रलय होते हैं] ॥ १ ॥

**येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वंज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद्यः।**
**तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथिव्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ॥ २ ॥**

**शब्दार्थ**–(येन) जिस [परमात्मा] से [इदम्] यह (सर्वम्) सव जगत् (नित्यम्) सदा (आवृतम्) आच्छादित रहता है, (यः) जो (ज्ञः) ज्ञाता, (कालकारः) काल का कर्त्ता [प्रकट करने वाला], (गुणी) सर्वगुणसम्पन्न [अनन्त गुणों वाला] [और] (सर्ववित्) सर्वज्ञ है (तेन) उसी से (ईशितम्) अधिष्ठित [अध्यक्षता में] (हि) निश्चय से (कर्म) [जगत् में] कर्म का (विवर्तते) सब प्रकार से संचालन हो रहा है [अर्थात् यह संसार चक्र चल रहा है]। (पृथिव्यप्तेजः) पृथिवी, जल वा तेज [अथवा] (अनिलखानि) वायु वा आकाश [इनका जगत् का कारण होना तो] (चिन्त्यम्) चिन्तनीय [सन्दिग्ध] है [ठीक नहीं क्योंकि परमात्मा ही इस सृष्टि का निमित्त कारण है और यह पञ्चभूत केवल सृष्टि के उपादान कारण अर्थात् साधन हैं] ॥ २ ॥

**तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम्।**
**एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥ ३ ॥**

**शब्दार्थ**–(तत्) वह [ब्रह्म] (कर्म) [सृष्टि रचनारूप] कर्म (कृत्वा) करके (विनिवर्त्य) निवृत्त होकर (भूयः) फिर (तत्त्वस्य) तत्त्व का (तत्त्वेन) तत्त्व के साथ (योगम्) योग (समेत्य) संगत कर (एकेन) एक (द्वाभ्याम्) दो (त्रिभिः) तीन (वा) या (अष्टभिः) आठों प्रथम अध्याय में कहे तत्त्व (कालेन) काल (च एव) लेकर (आत्मगुणैः सूक्ष्मैः) आत्मा के सूक्ष्म गुणों पर्यन्त [इसके योग से परमात्म देव कर्म का संचालन करता है, वे स्वतन्त्र कुछ नहीं कर सकते] ॥ ३ ॥

**आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः।**
**तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥ ४ ॥**

**शब्दार्थ**–(यः) जो मनुष्य (गुणान्वितानि) [सत्त्व, रज, तम] गुणों से युक्त (कर्माणि) कर्मों को (आरभ्य) आरम्भ करता (च) और (सर्वान्) सबको (भावान्) भावों से (विनियोजयेत्) युक्त करता है [तो फिर] (तेषाम्) उन [कर्मों] के (अभावे) भावरहित अर्थात् निष्काम होने पर (कृतकर्मनाशः) किये कर्म का नाश होता अर्थात् बन्धन में डालने वाला नहीं होता [और] (कर्मक्षये] [सकाम्) कर्म के क्षय होने पर (सः) वह उस ब्रह्म को (याति) प्राप्त हो जाता है जो (तत्त्वतः) वास्तव में (अन्यः) [जीव से] भिन्न है ॥ ४ ॥

**आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।**
**तं विश्वरूपं भवभूतमीडयं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥ ५ ॥**

**शब्दार्थ**–(सः) वह [ब्रह्म] (संयोगनिमित्तहेतुः) तत्त्वों के संयोग [अर्थात् सृष्टिरचना] का निमित्त कारण है। [वह] (त्रिकालात्) तीनों कालों [भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान] से (परः) परे (आदिः) सब तत्त्वों से पूर्व वर्त्तमान (अकलः) कलाओं [अवयवों] से शून्य (अपि) भी (दृष्टः) देखा जाता है। (तम्) उस (विश्वरूपम्) विश्वरूप [विश्व ही जिसका रूप है], (भवभूतम्) सृष्टि के रूप में प्रकट हो रहे (ईड्यम्) स्तुति के योग्य (स्वचित्तस्थम्) अपने चित्त [हृदय] में स्थित

(देवम्) परमात्मदेव की [जीव] (पूर्वम्) पूर्व [पहले] (उपास्य) उपासना करके [योग द्वारा प्राप्त कर सकता है] ।।५।।

**स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।**
**धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।।६।।**

**शब्दार्थ**–(सः) वह [ब्रह्म] (वृक्षकालाकृतिभिः) वृक्ष [छेदन-भेदन], काल [सीमा] और आकृति [आकार-काया] से (परः) परे [रहित], (अन्यः) [जीव वा प्रकृति से] भिन्न, (यस्मात्) जिसके निमित्त कारण से (अयम्) यह (प्रपञ्च) सारा संसार चक्र [परिवर्तते] घूम रहा है [धर्मावहम्–धर्म + आवहम्] धर्मप्रसारकं [धर्म प्राप्त कराने वाले], (पापनुदम्) पापनाशक, (भगेशम्) सकलैश्वर्य के स्वामी, (आत्मस्थम्) सर्व जगत् के वासस्थान [आश्रयभूत] को (ज्ञात्वा] जानकर ही [मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है] ।।६।।

**तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।**
**पतिं पतीनां परमं परस्तादविदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।।७।।**

**शब्दार्थ**–(तम्) उस (ईश्वराणाम्) ऐश्वर्यसम्पन्नों में (परमम् महेश्वरम्) परमैश्वर्यवान् [अथवा समर्थों में परमसमर्थ], (च) और (तम्) उस (देवतानाम्) सब विद्वानों [वा दिव्य गुणयुक्त पदार्थों] में (परमम् दैवतम्) परम विद्वान् [देवों के देव] (पतीनाम्) पतियों [स्वामियों-रक्षकों] में (पतिम्) [सर्वश्रेष्ठ] पति [और] (परस्तात्) परे से भी (परमम्) परे [अनन्त] (भुवनेशम्) सब संसार के स्वामी, (ईड्यम्) बहुत स्तुति के योग्य (देवम्) परमात्म देव को (विदाम) हम जानते हैं ।।७।।

**न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।**
**परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।।८।।**

**शब्दार्थ**–(तस्य) उस परमात्मा से (कार्यम्) [प्रकृति की न्याईं] कोई तद्रूप कार्य (च) और (कारणम्) उसका कारण

अर्थात् साधकतम दूसरा (न विद्यते) जाना नहीं जाता [अपेक्षित नहीं] अर्थात् परमात्मा अज है। वह किसी पदार्थ से नहीं बनता और न ही उसके चैतन्यस्वरूप से यह जगत् बनता है, वह कारण प्रकृति से जगत् का बनाने वाला निमित्त कारण है न कि उपादान कारण (तत्समः—तत् + समः) उसके समान [तुल्य] (न) कोई नहीं है (च) और (न) न ही (अभ्यधिकः) उससे कोई अधिक [बढ़कर] (दृश्यते) दिखाई देता है। (अस्य) उसकी (शक्तिः) शक्ति (परा) सर्वोत्तम सर्वोत्कृष्ट [और] (विविधा) नानाविध (एव) शक्ति ही [श्रूयते] सुनी जाती है। (च) और उसमें (ज्ञानबलक्रिया) [अनन्त] ज्ञान, बल वा क्रिया (स्वाभाविकी) स्वाभाविक [सहज स्वभाव से है और उसके लिए कोई कार्य कठिन नहीं है] ॥८॥

**न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।**
**स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥९॥**

**शब्दार्थ**—(तस्य) उस [परमात्मा का] (लोके) इस लोक [संसार] में [कश्चित्] कोई (पतिः) स्वामी अथवा रक्षक (न) नहीं है (च) और (न) न ही (ईशिता) उसका कोई नियन्ता [वश में करने वाला] अथवा उस पर शासन करने वाला है (च) और (न एव) न ही (तस्य) उसका (लिङ्गम्) कोई लिंग [पहचान कराने वाला चिह्न] है। (सः) वह (कारणम्) [इस सृष्टि का निमित्त] कारण है [और] (करणाधिपाधिपः) साधनों के स्वामी का भी स्वामी है (च) और (अस्य) इसका (कश्चित्) कोई (जनिता) उत्पन्न करने वाला (न) नहीं (च) और (न) न ही (अधिपः) [कोई उसके ऊपर, उसका कोई] शासक, स्वामी अथवा अधिष्ठाता है ॥९॥

**यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः।**
**देव एकः स्वमावृणोत् स नो दधात् ब्रह्माप्ययम् ॥१०॥**

**शब्दार्थ**—(प्रधानजैः) प्रकृति से उत्पन्न (तन्तुभिः) तन्तुओं से (तन्तुनाभः) मकड़ी (स्वभावतः) स्वभाव से [अनायास]

(इव) जैसे [अपने को ढक लेती है वैसे (जो)] जो (एकः) एक (देवः) परमात्मदेव है (स्वम्) अपने को [कार्यरूप प्रकृति से] (आवृणोत्) घेर लेता है। (सः) वह (नः) हमें (ब्रह्माप्ययम्—ब्रह्म + अप्ययम्) ब्रह्म [अपने] में लीनता (दधात्) धारण [प्रदान करे [अर्थात्] मोक्ष प्रदान करे ।। १० ।।

**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।**
**कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ ११ ॥**

**शब्दार्थ**—[वह] (देवः) परमात्मदेव (एकः) एक ही (सर्वभूतेषु) सब प्राणियों में (गूढः) छिपा हुआ, (सर्वव्यापी सर्वव्यापक (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों की आत्माओं के भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित [व्यापक], (कर्माध्यक्षः) सब के कर्म का अधिष्ठाता [कर्मफल प्रदाता], (सर्वभूताधिवासः) सब भूतों [प्राणियों तथा पृथिव्यादि] में बसने वाला, तथा सब भूतों का आधार। (साक्षीः) सबके शुभाशुभ कर्मों का द्रष्टा, (चेता) चेतनस्वरूप, (केवलः) अद्वितीय (च) और (निर्गुण) गुणों [दुर्गुणों अथवा सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों] से रहित [अलग] है ।। ११ ।।

**एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति।**
**तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥**

**शब्दार्थ**—(यः) जो (एकः) अकेला ही (निष्क्रियाणाम्) निष्क्रिय [निश्चेष्ट तत्त्व] को (वशी) वश में करने वाला है [और] (बहूनाम्) बहुत पदार्थों के (एकम्) एक (बीजम्) बीज को (बहुधा) बहुत प्रकार के (करोति) कर देता है (तम्) (आत्मस्थम्) आत्मा में स्थित [परमात्मा] को (ये) जो (धीराः) बुद्धिमान् लोग (अनुपश्यन्ति) साक्षात् कर [अर्थात् यथार्थतया जान] लेते हैं(तेषाम्) उन्हीं को (शाश्वतम्) सदा रहने वाला सुख [मोक्ष] [प्राप्त हो जाता है] (इतरेषाम्) दूसरों [अज्ञानियों] को (न) नहीं ।। १२ ।।

**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।**
**तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥**

**शब्दार्थ**—(यः) जो (नित्यानाम्) नित्यों में (नित्यः) नित्य है, (चेतनानाम्) चेतनों में (चेतनः) चेतन है [अर्थात् अमर चेतनस्वरूप है]। (एकः) ही [अकेला] (बहूनाम्) अनेकों जीवों की (कामान्) कामनाओं की (विदधाति) सिद्धि करने वाला है (तत्) वही (कारणम्) इस सृष्टि का निमित्त कारण है [और] (सांख्ययोगाधिगम्यम्) सांख्य [ज्ञान] व योग से वह प्राप्त होता है। उस (देवम्) देवों के देव [परमात्मदेव] को (ज्ञात्वा) जानकर ही [मनुष्य] [सर्वपाशैः] सब पाशों [जन्म-मरण के बन्धनों] से (मुच्यते) छूट जाता है [अर्थात्] मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥ १३ ॥

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।**
**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १४ ॥**

**शब्दार्थ**—(तत्र) वहाँ [उस परमात्मा के सामने] (न) न (सूर्य) (भांति) चमकता है [अर्थात् सूर्य उसको प्रकाशित दिखा नहीं सकता] [और] (न) न ही (चन्द्रतारकम्) चांद और तारे। (न) न (इमाः) ये (विद्युतः) बिजलियाँ (भान्ति) उसके सामने चमकती हैं, अथवा उसको प्रकाशित कर सकती हैं [तो] (अयम्) यह (अग्निः) (कुतः) कैसे (उसे प्रकाशित कर सकता है)। (तम्) उसके (एव) ही (भान्तम्) प्रकाशित होने [चमकने] से (सर्वम्) यह सब [सूर्य, चन्द्र, तारे आदि] (अनुभाति) चमकते हैं। (तस्य) उसके (भासा) प्रकाश [ज्योति] से ही (इदम्) यह (सर्वम्) सारा जगत् (विभाति) चमकता है ॥ १४ ॥

**एको हंसः भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः।**
**तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १५ ॥**

**शब्दार्थ**—(एकः) एक [अद्वितीय] (हंसः) पापनाशक परमात्मा (हि) ही [अस्य] इस (भुवनस्य) जगत् के (मध्ये) [बीच में] व्यापक है। (सः) वह (एव) ही (अग्निः)

प्रकाशस्वरूप (ज्ञानस्वरूप) (सलिले) जल में (सन्निविष्टः) स्थित हुआ है [अग्नि के मेल के बिना वायु से जल नहीं बनता]। (तम्) उस [ब्रह्म] को (एव) ही (विदित्वा) जानकर [मनुष्य] (मृत्युम्) मृत्यु दुःख को (अति एति) उल्लंघन कर सकता है। (अन्यः) और कोई (पन्था) मार्ग (अयनाय) मोक्ष के लिए (विद्यते) जाना (न) नहीं जाता अर्थात् नहीं है ॥ १० ॥

**स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद्यः।**
**प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥ १६ ॥**

**शब्दार्थ**–(सः) वह [परमात्मा] (विश्वकृत्) जगत् का रचने वाला, (विश्वविद्) जगत् का जानने वाला,(आत्मयोनिः) स्वयम्भू, (ज्ञः) ज्ञाता, (कालकारः) काल का कर्त्ता [नियम में बान्धने वाला], (गुणी) सद्गुणों से युक्त, (सर्ववित्) सर्वज्ञ (प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः) प्रधान [प्रकृति] और क्षेत्रज्ञ [जीवात्मा] का पति [स्वामी], (गुणेश–गुण + ईशः) [तीनों] गुणों का नियन्ता [और] (संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः = संसार + मोक्ष + स्थिति + बन्ध + हेतुः) संसार के मोक्ष, स्थिति [पालन] वा बन्ध का हेतु [कारण] है [अर्थात् जगत् की उत्पत्ति, स्थिति वा प्रलय वा जीव के मोक्ष पालन वा मरण–जन्म के बन्धन का हेतु वही परमात्मा है] ॥ १६ ॥

**स तन्मयो ह्यमृतः ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता।**
**य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय ॥ १७ ॥**

**शब्दार्थ**–(सः) वह ब्रह्म (हि) ही निश्चय से (तन्मयः) आत्ममय [स्वयम्भू, किसी अन्य का विकार नहीं], (अमृतः) अविनाशी [सदा मुक्तस्वभाव] (ईशसंस्थः) शासन की मर्यादा वाला, (ज्ञः) जानने वाला [परमविद्वान्], (सर्वगः) सर्वव्यापक अनन्त, (अस्य) इस (भुवनस्य) जगत् का (गोप्ता) रक्षक, (यः) जो [तथा] (अस्य) इस (जगतः) जगत् का (नित्यम्) नित्य (एव) ही (ईशे) स्वामी [नियन्ता] है। (ईशनाय) [इस

समस्त जगत् के] शासन के लिए (अन्यः) दूसरा कोई (हेतु) कारण [समर्थ] (न) नहीं (विद्यते) जाना जाता ॥ १७ ॥

**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।**
**तं ह देवं आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ १८ ॥**

शब्दार्थ–(यः) जो (पूर्वम्) पहले पहल (ब्रह्माणम्) चतुर्वेदी [चारों वेदों के ज्ञाता ऋषि] को [विदधाति] बनाता [उत्पन्न करता] है। (च) और (यः) जो (वै) निश्चय से (तस्मै) उस [ब्रह्मा ऋषि] के लिए [वेदान्] चारों वेदों का प्रकाश (प्रहिणोति) [अग्नि, वायु आदि ऋषियों द्वारा] स्थापित कराता है (तम्) उस (आत्मबुद्धि प्रकाशम्) आत्मा में बुद्धि के प्रकाश करने वाले (देवम्) परमात्मदेव की (हि) ही (शरणम्) शरण को (अहम्) मैं (मुमुक्षुः) मोक्ष का इच्छुक (वै) निश्चय से [प्रपद्ये] जाता हूँ ॥ १८ ॥

**निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।**
**अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥ १९ ॥**

शब्दार्थ–[मैं मुमुक्षु उस] (निष्कलम्) कला [अवयव] रहित, (निष्क्रियम्) सकाम अर्थात् बन्धन में डालने वाले कर्मों से रहित, (शान्तम्) सदा शान्तस्वरूप, (निरवद्यम) निर्दोष [अविद्या अन्धकार से परे], (निरञ्जनम्) निर्मल, (अमृतस्य) मोक्ष के (परं सेतुम्) परम [सर्वोत्कृष्ट] सेतु [दुःखसागर से पार कराने वाला], (दग्धेन्धनमिवानलम्–दग्ध + इन्धनम् + इव + अनलम्) जले ईंधन वाली अग्नि के समान [निर्धूम दीप्तिमान्] [परमात्मदेव की शरण में जाता हूं] ॥ १९ ॥

**यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।**
**तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ २० ॥**

शब्दार्थ–(यदा) जब (मानवाः) मनुष्य (चर्मवत्) मृगचर्म से (आकाशम्) [विशाल] आकाश को [वेष्टयिष्यन्ति] लपेट लेंगे (तदा) तब (देवम्) परमात्मा देव को (अविज्ञाय) जाने बिना ही (दुःखस्यान्तः) (दुःख का अन्त) (भविष्यति) हो

जायेगा [अर्थात् जैसे चर्म से आकाश] का ढकना असम्भव है वैसे ब्रह्म को जाने बिना दुःखों [का अन्त होना अर्थात् मोक्ष प्राप्ति असम्भव है] ।। २० ।।

**तपः प्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्।**
**अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥ २१ ॥**

**शब्दार्थ**–(तपः) तप [धर्मानुष्ठान] के (प्रभावात्) प्रभाव से (च) और (देवप्रसादात्) देव [भगवान्] के अनुग्रह से (विद्वान्) (श्वेताश्वतरः) श्वेताश्वतर ऋषि ने (सम्यगृषिसङ्घजुष्टम्) भली प्रकार ऋषियों के संघ [मण्डली] द्वारा सेवित (ब्रह्म) ब्रह्म का (परमम्) परम (पवित्रम्) पवित्र (ह) पूर्व कभी (अत्याश्रमिभ्यः) संन्यासियों को (प्रोवाच) उपदेश किया ।। २१ ।।

**वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।**
**नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥ २२ ॥**

**शब्दार्थ**–(पुराकल्पे) प्राचीन समय में (परमम्) [उपरोक्त] परम [सर्वोत्कृष्ट] (गुह्यम्) गूढ़ [ब्रह्मज्ञान] (वेदान्ते) वेदान्त शास्त्र में (प्रचोदितम्) वर्णन किया गया था। [इसका उपदेश] (अप्रशान्ताय) अशान्त चित्त वाले व्यक्ति, (अपुत्राय) अपुत्र [जो योग्य पुत्र न हो] [वा] (पुनः) या (अशिष्याय) अशिष्य [जो योग्य शिष्य न हो] को (न) नहीं (दातव्यम्) देना चाहिये ।। २२ ।।

**यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।**
**तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः प्रकाशन्ते महात्मन इति ॥ २३ ॥**

**शब्दार्थ**–(यस्य) जिस मनुष्य की(देवे) परमात्मदेव पर (परा) परम (भक्तिः) भक्ति [होती है] [और जिसकी भक्ति] (यथा) जैसे (देवे) परमात्मदेव में (तथा) वैसे ही (गुरौ) गुरु में होती है (तस्य) उसी [ऐसे] (महामनाः) महात्मा को [ही] (एते) ये (कथिताः) [उपनिषद् में] कह गये [उपरोक्त] (अर्थाः) रहस्य (हि) निश्चय से (प्रकाशन्ते) प्रकाशित होते हैं। (इति) ऐसे जानना चाहिए ।। २३ ।।